SURESH GYAN VIHAR UNIVERSITY
Accredited by NAAC with 'A+' Grade

Master of Arts

(Hindi)

गद्य विधाएँ - 1 (HNL-506)

Semester-II

Author- Ramavtar Yogi

SURESH GYAN VIHAR UNIVERSITY

Centre for Distance and Online Education
Mahal, Jagatpura, Jaipur-302025

EDITORIAL BOARD (CDOE, SGVU)

Dr (Prof.) T.K. Jain
Director, CDOE, SGVU

Ms. Hemlalata Dharendra
Assistant Professor, CDOE, SGVU

Ms. Kapila Bishnoi
Assistant Professor, CDOE, SGVU

Mr. Ashphaq Ahmad
Assistant Professor, CDOE, SGVU

Dr. Manish Dwivedi
Associate Professor & Dy, Director, CDOE, SGVU

Mr. Manvendra Narayan Mishra
Assistant Professor (Deptt. of Mathematics) SGVU

Published by:

S. B. Prakashan Pvt. Ltd.

WZ-6, Lajwanti Garden, New Delhi: 110046

Tel.: (011) 28520627 | Ph.: 9205476295

Email: info@sbprakashan.com | Web.: www.sbprakashan.com

© SGVU

All rights reserved.

No part of this book may be reproduced or copied in any form or by any means (graphic, electronic or mechanical, including photocopying, recording, taping, or information retrieval system) or reproduced on any disc, tape, perforated media or other information storage device, etc., without the written permission of the publishers.

Every effort has been made to avoid errors or omissions in the publication. In spite of this, some errors might have crept in. Any mistake, error or discrepancy noted may be brought to our notice and it shall be taken care of in the next edition. It is notified that neither the publishers nor the author or seller will be responsible for any damage or loss of any kind, in any manner, therefrom.

For binding mistakes, misprints or for missing pages, etc., the publishers' liability is limited to replacement within one month of purchase by similar edition. All expenses in this connection are to be borne by the purchaser.

Designed & Graphic by : S. B. Prakashan Pvt. Ltd.

Printed at :

विषय-सूची

इकाई 1

निबन्ध: धोखा (प्रताप नारायण मिश्र) 5

इकाई 2

निबन्ध: कुटज (हजारी प्रसाद द्विवेदी) 15

इकाई 3

रेखाचित्र : ठकुरी बाबा (महादेवी वर्मा) 28

इकाई 4

जीवनी : कलम का सिपाही (अमृतराय) 44

इकाई 5

आत्मकथा : क्या भूलूँ क्या याद करूँ (हरिवंश राय बच्चन) 59

vf/kxe ifj.kke (Learning out comes)

fo|kFkhZ le>uk esa l{ke gksxsa

bdkbZ &1

- fo|kFkhZ irki ukjk;.k feJ dk O;fDrxr thou dk ifjp; dk ikBu djsaxsA
- irki ukjk;.k feJ ds lkfgfR;d ifjp; dk ikBu djsaxsA
- o /kk[kk fuca/k dh fo'k; oLrq dk v/;;u djsaxsA
- o /kk[kk fuca/k dh Hkk'kk &&'kSyh dk v/;;u djsaxsA

bdkbZ &2

- fo|kFkhZ gtkjh izlkn f}osnh ds O;fDrxr ,oa lkfgfR;d thou dk v/;;u djsaxsA
- o yfyr fuca/k dqVt dh vUroLrq dk Kku ikIr djsaxsA
- o yfyr fuca/k dh ewy lonuk dk le> ldsaxsA

bdkbZ 3

- fo|kFkhZ j[kkfp= ds Lo:i ,oa fodkl dk v/;;u djsaxsA
- og egknsoh oekZ ds O;fDrxr ,oa lkfgfR;d thou dk v/;;u djsaxsA
- og j[kkfp= Bdqjh ckck dh vUroLrq ds ckjs esa tku ldsxsA
- og j[kkfp= Bdqjh ckck dh ewy lonuk dk tku ldsxsA

bdkbZ 4

- fo|kFkhZ x|&lkfgR; dh fo/kk thouh ds ckjs esa Kku ikIr djsaxsA
- og thouh dye dk flikgh dh leh{kk djsaxsA
- o thouh ds ek/;e ls iepan ds pfj= dk v/;;u djsaxsA

bdkbZ 5

- fo|kFkhZ x|&lkfgR; dh fo/kk vkRedFkk ds fodkl ds igyvk dk Kku ikIr djsaxsA
- o vkRedFkk ds ie[k jpukdkjksa ds ckjs esa Kku ikIr djsaxsA
- o vkRedFkk D;k Hkwy D;k ;kn d# dh vUroLrq dk v/;;u djsaxsA

गद्य विधाएँ 1
अध्ययन

इकाई-1

निबन्धः धोखा (प्रताप नारायण मिश्र)
जीवन परिचय, साहित्यिक योगदान, रचना के बारे में, व्याख्या के लिए प्रमुख अंश, **मूलपाठ : निबंध**

इकाई-2

निबन्धः कुटज (हजारी प्रसाद द्विवेदी)
उद्देश्य, प्रस्तावना, हजारी प्रसाद द्विवेदी और उनका निबंध लेखन, कुटज की अंतर्वस्तु, ललित निबंध के रूप में कुटज, कुटज की भाषा-शैली, **सारांश**

इकाई-3

रेखाचित्र : ठकुरी बाबा (महादेवी वर्मा)
उद्देश्य, प्रस्तावना, रेखाचित्र के रूप में ठकुरी बाबा, ठकुरी बाबा में सामाजिक चेतना, ठकुरी बाबा की भाषा और शिल्प, ठकुरी बाबा का मूल्यांकन, **सारांश**

इकाई-4

जीवनी : कलम का सिपाही (अमृतराय)
उद्देश्य, प्रस्तावना, जीवनी का स्वरूप, जीवनी साहित्य : परंपरा और विकास, कलम का सिपाही : जीवनी साहित्य की अन्यतम उपलब्धि, कलम का सिपाही : वस्तु और संवेदना, कलम का सिपाही : शिल्पगत वैशिष्टय, कलम का सिपाही का मूल्यांकन, **सारांश**

इकाई-5

आत्मकथा : क्या भूलूँ क्या याद करूँ (हरिवंश राय बच्चन)

पाठ-संरचना
उद्देश्य, प्रस्तावना, आत्मकथा के रूप में क्या भूलूँ क्या याद करूँ, क्या भूलूँ क्या याद करूँ की अंतर्वस्तु, क्या भूलूँ क्या याद करूँ में लेखक के विचार, क्या भूलूँ क्या याद करूँ का संरचना शिल्प, क्या भूलूँ क्या याद करूँ का महत्व और उपयोगिता, **सारांश**

इकाई 1

निबन्धः धोखा
(प्रताप नारायण मिश्र)

पाठ-संरचना

1.1 जीवन परिचय
1.2 साहित्यिक योगदान
1.3 रचना के बारे में
1.4 व्याख्या के लिए प्रमुख अंश
1.5 मूलपाठ : निबंध
1.6 अभ्यास प्रश्न

टिप्पणी

1.1 जीवन परिचय

भारतेन्दु के जीवनकाल में ही लेखकों और कवियों का एक मंडल तैयार हो गया था। इस मंडल के लेखकों ने नवजागरण की भूमिका को पहचाना और उससे साहित्य को समृद्ध करने का प्रयत्न किया। हिंदी साहित्य के नूतन विकास में योगदान किया। सांस्कृतिक जागरण का बोध जो उस समय अंकुरित हो रह था। उसे फलने-फूलने के लिए इन साहित्यकारों ने उर्वर भूमि प्रदान की। भारतेन्दु मंडल के लेखकों ने साहित्य और जीवन के नजदीकी रिश्तों को पहचाना। भारतेन्दु मंडल के साहित्यकारों में प्रताप नारायण मिश्र का नाम प्रमुख है। बैंसवाड़ा अपनी लोक संस्कृति के लिए प्रसिद्ध है। यहाँ की लोक संस्कृति का प्रभाव यहाँ जन्म लेने वाले साहित्यकारों पर व्यापक रूप से पड़ा है। सूफी कवि मलिक मुहम्मद जायसी और मुल्ला दाऊद में इसका असर देख सकते हैं। इसी बैंसवाड़ा जनपद के एक गाँव जिसका नाम बैजेगांव है, उसी गाँव में 24 सितंबर 1856 ई. को प्रताप नारायण मिश्र का जन्म हुआ था। इनके पूर्वजों का व्यापार बाग लगाना और पशुपालन करना था। इनके पिता संकटा प्रसाद मिश्र ज्योतिष विद्या में पारंगत थे। इन्होंने ज्योतिष विद्या के कारण अपार धन संपत्ति अर्जित की।

प्रताप नारायण जी के पिता की इच्छा थी कि बालक प्रताप को ज्योतिष विद्या पढ़ाई जाय। परंतु इनका मन संस्कृत की पाण्डित्य परंपरा में नहीं लगा। पिता ने उनका दाखिला रामगंज के मिशन स्कूल में करा दिया। पर वहाँ भी उनका मन नहीं लगा। स्वतंत्र और मनमौजी प्रवृत्ति के कारण जहाँ उन्होंने जीवन की मस्ती देखी, वहीं रम जाते थे। 1875 में इन्होंने स्कूली शिक्षा को नमस्कार कर दिया। लेकिन इसी बीच उन्होंने कई भाषाओं की जानकारी हासिल कर ली थी। वे हिंदी, अंग्रेजी, उर्दू, फारसी, संस्कृत आदि भाषाओं के अतिरिक्त अवधी और ब्रजभाषा के भी पूर्ण जानकार थे। उर्दू और फारसी में वे 'बरहमनश के उपनाम से कविता किया करते थे।

मिश्रजी का गृहस्थ जीवन बड़ा अस्त-व्यस्त रहा। इनके दो विवाह हुए थे। पहला विवाह 18-19 वर्ष की अवस्था में हुआ था। चार-पाँच महीने के बाद ही उनकी पत्नी का देहान्त हो गया। दूसरा विवाह उन्नाव जिले के पंडित राम सहाय शुक्ल की पुत्री सूरज कुंअरि से हुआ था। मिश्रजी दृढ़ इच्छा शक्ति वाले गृहस्थ कभी नहीं रहे। लापरवाही और धनाभाव ने उनकी पारिवारिक हालत को खस्ता कर दिया था। उनके घर का खर्च मकान किराए से चलता था।

प्रतापनारायण मिश्र के कानपुर वाले घर पर प्रसिद्ध साहित्यकारों का जमघट रहता था। वहाँ 'ब्राह्मण' पत्र के संपादन के विषय और विश्लेषण तथा हिन्दी के प्रसार संबंधी योजनाओं पर बहस होती थी। वे अपने समय के अच्छे लावनी बाज थे। 19वीं सदी के वे समर्पित साहित्य साधकों में से एक थे।

1894 ई. में मिश्र जी ऐसे बीमार पड़े कि फिर कभी स्वस्थ नहीं हो सके। अगस्त 1894 में उनका 38 वर्ष की अवस्था में स्वर्गवास हो गया। वे बड़े ही नेक और जिंदादिल इंसान थे। वे जीवन की तह में छिपे विनोद और मनोरंजन की सामग्री ढूँढ लिया करते थे। उनकी प्रवृति हास्यविनोद की ओर अधिक थी। इनकी रचनाओं को देखने से पता चलता है कि उनका पर्यावरण बोध भी काफी विकसित था। उन्हें न सिर्फ प्रकृति से अपितु पशु, पक्षियों से भी प्रेम था। उनमें देश की वर्तमान दशा और विदेशी शासन के प्रति तीव्र आक्रोश था। वे ऐसे सजग साहित्यकार थे जो कांग्रेस जैसी राष्ट्रीय राजनीतिक संस्था से आजीवन संबद्ध रहे।

1.2 साहित्यिक योगदान

निबन्ध: धोखा
(प्रताप नारायण मिश्र)

समसायियक जीवन के प्रति जैसी जागरूकता भारतेन्दु युग के साहित्यकारों में मिलती है वैसी अन्य युग

टिप्पणी

में मुश्किल से ही दिखाई देती है। वे नवजागरण दौर के लेखक थे और उसकी प्राय: सभी विशेषताएँ उनके लेखन में दिखाई देती है।

प्रतापनारायण मिश्र के साहित्यिक व्यक्तित्व के तीन प्रमुख रूप हैं – निबंधकार, कवि तथा पत्रकार। इनके कवि व्यक्तित्व में जहाँ ब्रजभाषा की श्रृंगारिक प्रवृत्ति है वहीं लोक प्रवृत्ति के तत्वों की बहुलता भी है। व्यंग्य विनोद के साथ देशीपन की गंध भी इनकी कविता में विद्यामान है। 'प्रेमपुष्पावली' और 'मन की लहर' में उनकी विविध भाषाओं में लिखी गई लावनियों का संकलन है जिसका प्रकाशन 1885 में हुआ था। 'श्रृंगार विलास', 'आल्हादंगल', 'ब्रैडला स्वागत' लोकोक्ति शतक (100 कहावतों पर राष्ट्रीय भाव से युक्त 100 कविताएँ) आदि उनके काव्य संग्रह हैं। इसके अतिरिक्त आपके दो संपादित संकलन भी हैं – 'दीवाने बरहमन' (उर्दू कविताओं का संकलन) तथा 'रसखान शतक'। इनकी कविताओं का एक महत्वपूर्ण संकलन 'प्रताप लहरी' के नाम से प्रकाशित हुआ था। मिश्र जी अच्छे लावनीबाज थे। लावनी की प्रतियोगिता दो दलों के बीच में होती है। वे लावनी गायन में भी दक्ष थे। उनका अपना मानना था कि हिंदी उत्थान में इससे सहायता मिलेगी। इनके काव्य में लोकजीवन की सहजता है। इनका भावबोध और दृष्टिकोण आधुनिक है।

वे हिंदी के श्रेष्ठ आत्मव्यंजक निबंधकार हैं। उनके निबंध में देश दशा, समाज सुधार, नागरी-हिंदी प्रचार, मनोरंजन आदि सब विषयों पर विवेचन होता था। उनके निबंधों के संग्रह 'निबंध नवनीत' और 'प्रताप पीयूष' प्रताप नारायण ग्रंथावली में संकलित है। 'ब्राह्मण' पत्र उन्होंने विविध विषयों पर गद्य प्रबंध लिखने के लिए ही निकाला था!

प्रतापनारायण मिश्र नाटककार और अभिनेता भी थे। उन्होंने स्वयं भारतेन्दु के कई नाटकों में भूमिका की थी। उन्होंने 1883 ई. में 'भारत एंटरटेनमेंट' कल्ब की स्थापना की। उनके द्वारा लिखित 'कलिकौतक' रूपक में पाखंडियों और दराचारियों का चित्र खींचकर उनसे सावधान रहने की ओर संकेत किया गया है। 'संगीत शाकंतल' लावनी के ढंग पर गाने योग्य पद्यबद्ध नाटक है। मिश्रजी का नाटक 'भारत दुर्दशा' प्रतीकात्मक है जिसमें भारत, कलियुग, आलस्य आदि पात्र हैं। 'हठी हम्मीर' रणथंभौर पर अलाउद्दीन की चढ़ाई का वृत लेकर लिखा गया नाटक है। 'गो संकट' और 'कलिप्रभाव' नाटक के अतिरिक्त 'जुआरी खुआरी' नामक उनका एक प्रहसन भी है।

प्रतापनारायण मिश्र के साहित्य में कलात्मक तराश नहीं अनगढ़ता है। वे जीवन की मौज मस्ती में ही नहीं समाज और परिस्थिति के आत्मज्ञान से भी रचना करते थे। 19 वीं सदी का जो वैचारिक अन्तर्विरोध भारतेन्दु में मिलता है वही अन्तर्विरोध उनमें भी मौजूद था। उनमें स्वदेशी चेतना है लेकिन आज की स्वदेशी चेतना की तरह वह मात्र आडंबर नहीं था। उनकी स्वदेशी चेतना लोक परंपरा से फूटती हुई मालूम पड़ती है।

1.3 रचना के बारे में

'धोखा' निबंध का रचनाकाल ठीक तरह से मालूम नहीं होने पर भी उसे 1876-85 के बीच की रचना मान सकते हैं। इस निबंध की रचना से पूर्व वे कवि, नाटकार और पत्रकार के रूप में प्रतिष्ठित हो चुके थे।

धोखा नामक भाव को समझने के ध्येय से इस निबंध की रचना हुई है। निबंध को जीवन संदर्भो से जुड़े अनुभवों से पुष्ट बनाया गया है। अनुभव और शास्त्र को ध्यान में रखकर 'धोखा' भ्रम, छल आदि के बीच के सूक्ष्म अंतर को बताया गया है। लोक और समाज के मंगल के लिए 'धोखा' की पहचान अनिवार्य मानते है। उनके व्यक्तित्व की उन्मुक्तता उनके निबंध का प्राणतत्व है।

निबन्ध: धोखा
(प्रताप नारायण मिश्र)

टिप्पणी

'धोखा' प्रतापनारायण मिश्र का भावपरक निबंध है। सर्वप्रथम उन्होंने धोखा और भ्रम को स्पष्ट किया है। वे मनोभाव को स्पष्ट करने में हिचकते नहीं, उस, पर बेबाक टिप्पणी करते हैं। उसे लोक अनुभव से संपृक्त करते हैं। उनके लेखन की आधुनिकता इस बात में है कि वे भाव और विचार का एक पक्षीय विश्लेषण नहीं करके उसके बहुपक्षीय प्रभाव को दिखाते हैं। मनुष्य प्रत्यक्ष में इतना अधिक विश्वास करने लगा है कि उसे अमूर्त भाव और संवेदना जैसे शब्द अजनबी लगने लगेंगे इसकी ओर भी लेखक ने संकेत किया है। इसमें जिन समस्याओं को उठाया गया है वह आधुनिक सभ्यता और आधुनिक मनुष्य की समस्याएँ हैं। उनके मानोभाव संबंधी, निबंधों को देखकर ऐसा लगता है कि रामचंद्र शुक्ल के मनोभाव संबंधी निबंधों के लिए जमीन उन्नीसवीं सदी में बनने लगी थी।

'धोखा' एक मनोभाव को केन्द्र में रखकर लिखा गया निबंध है। भाव की गयात्मकता के महत्वपूर्ण पक्ष को सामने रखा गया है। वे धोखा और ईश्वरीय लीला के भ्रम के बीच साम्य और वैषम्य पर बल देते हैं। लोक अनुभव में प्रचलित उद्धरणों से बात को पुष्ट करते हैं। बुद्धिवाद की अधिकता के कारण सहज जीवन के प्रवाह में जो बाधा उपस्थित हुई उसकी मर्मस्पर्शी पहचान उनमें मौजूद हैं। वे जीवन में निहित रचनात्मक संभावनाओं की खोज करते हैं। सांसारिक जीवन और संबंधों को छोड़कर विराग की ओर अग्रसर होने वाले को वे अपना निशाना बनाते हैं। जीवन की वास्तविकता से सीधा मुकाबला करने की सामर्थ्य पर उन्होंने विश्वास रखा है। बड़े-बड़े वैचारिक प्रश्न और तर्कजाल की उलझन को गहराई में जाकर उन्होंने देखा है। दूसरी ओर यथार्थ और प्रत्यक्ष को वे जीवन का एकमात्र प्रयोजन नहीं बनाते हैं। अमूर्त भाव चाहे गोचर नहीं हो पर उसकी सत्ता पर संदेह करना उचित नहीं है। उनके संबंधों में जीवन के प्रति संतुलित दृष्टिकोण को अपनाने की वकालत की गई है। उन्होंने शाश्वत सनातन सत्य पर व्यंग्य किया है, उसे भी संदेह की निगाह से देखा है। इसमें उन्हें कोई हिचक नहीं दिखाई है। यह उनके आधुनिक होने का प्रमाण है।

शैली की दृष्टि से 'धोखा' विचार प्रधान भावात्मक निबंध है। उनके इस निबंध में अभिव्यक्ति की उन्मुक्तता दिखाई देती है। उनके व्यक्तित्व की सर्वाधिक प्रभावपूर्ण अभिव्यक्ति

उनके आत्मव्यंजक निबंधों में ही होती है। भाव के आवेग के साथ उनका व्यक्तित्व साकार हो उठता है। मिश्रजी ने समास शैली का प्रयोग भी जहाँ-तहाँ किया है। उनके निबंध में हास्य है, व्यंग्य है और जिदांदिली है और इसी वजह से उनकी भाषा स्वयं मूर्तिमान हो उठती है। शब्दों में गति आ जाती है। विषय को रूचिकर बनाने के लिए न केवल दृष्टांत एवं मुहावरे का प्रयोग करते हैं अपितु वे रचनात्मक भाषा भी लिखते हैं। उनकी भाषा पूरबी कहावतों और मुहावरों की झड़ी लगा देती है। मिश्रजी में भाषागत दोषों के रहते हुए भी कह सकते हैं कि वे समर्थ निबंधकार हैं। जीवन और जगत संबंधी चितंन को अपने व्यक्तित्व की संश्लिष्टता से मनोरंजक बनाते हैं।

शब्दावली:

बरंच : बल्कि

इद मित्थं : बिल्कुल सही

माया बपुधारी : माया का अवतार नारि नारि सब एक हैं जस मेहर तस माय : पूर्वी हिंदी प्रदेशों में प्रचलित लोकोक्ति का प्रयोग। जिसका भावार्थ यह है कि नारी के सभी रूप एक से हैं चाहे वह पत्नी हो या माता।

मूंदि गई आंखें तब लाखें केहि काम की : लोकोक्ति का प्रयोग। भावार्थ यह है कि जब जीवन ही नहीं रहेगा तो लाखों की धन-संपत्ति भी किस काम की रहेगी।

टिप्पणी

मुडियावे : अपने मत्थे लेना

ना हम काहू के कोऊ ना हमारा : 'कवितावली' में तुलसीदास की पंक्ति। जिसका अर्थ है- न मेरा काई है, न मैं किसी के लिए हूँ।

व्यतिक्रम : उलटे क्रम से अविदित सुख दुख : जिस सुख दुख के विषय में जानकारी न हो।

निर्विशेषरूप : परमात्मा, परब्रह्म

अथच : और भी

ढिच्चर : बखेड़ा

प्राज्ञगण : बुद्धिमान आदमी

संखिया : एक बहुत जहरीली सफेद उपधातु या पत्थर। उससे तैयार भस्म दवा के काम में आता है।

सिंगिया : एक पौधा, यह भी जहरीला होता है और औषधि बनाने में काम आता है।

दोख : दोष (भाषा के पूरबी रूप का प्रयोग है)

हिकमत : कौशल या चतुराई

गुरू गुड़ ही रहा चेला शक्कर हो गया : कहावत का प्रयोग

अक्किल : अक्ल, बुद्धि

भेष : वेशभूषा

गो : इंद्रिय

निरे : निपट

माया मोहनी मन हरन : ब्रह्म की शक्ति का रूप माया माना गया है। सूरदास यहाँ मोहिनी शक्ति मनोहर रूप की चर्चा करते हैं।

गो गोचर जहं लगि मन जाई, सो सब माया जानेहु भाई : तुलसीदास की पंक्ति है। इंद्रिय या सांसारिक विषय वासनाओं में जिसका मन लग गया हो उस पर व्यंग्य करते हैं। माया को परमज्ञानी ही पहचानते हैं। जो संसारिकता में खोया हुआ है उसे तो उसकी पहचान ही नहीं होती।

1.4 व्याख्या के लिए प्रमुख अंश

1. जो सर्वथा निराकार होने पर भी मत्स्य, कच्छपादि रूपों में प्रकट होता है, और शुद्ध निर्विकार कहलाने पर भी नाना प्रकार की लीला किया करता है। वह धोखे का पुतला नहीं है तो क्या है? हम आदर के मारे उसे भ्रम से रहित कहते हैं, पर जिसके विषय में कोई निश्चयपर्वक 'इदमित्थं' कही नहीं सकता जिसका सारा भेद स्पष्ट रूप से कोई जान ही नहीं सकता वह निर्धम या भ्रमरहित क्यों कर कहा जा सकता है। शुद्ध निर्धम वह कहलाता है जिसके विषय में भ्रम का आरोप भी न हो सके। पर उसके तो अस्तित्व तक में नास्तिकों को संदेह और आस्तिकों को निश्चित ज्ञान का अभाव रहता है, फिर वह निर्धम कैसा? और जब वही भ्रम से पूर्ण है तब उसके बनाए संसार में भ्रम अर्थात् धोखे का अभाव कहाँ?
2. सच है, भ्रमोत्पादक भ्रमस्वरूप भगवान के बनाए हए भव (संसार) में जो कुछ है भ्रम ही है। जब तक भ्रम है तभी संसार है बरंच संसार का स्वामी भी तभी तक है, फिर कुछ भी नहीं!

निबन्धः धोखा
(प्रताप नारायण मिश्र)

टिप्पणी

और कौन जाने हो तो हमें उससे कोई काम नहीं ! परमेश्वर सबका भ्रम बनाए रखे इसी में सब कछ है। जहाँ भरम खल गया वहीं लाख की भलमंसी खाक में मिल जाती है

3. धोखा खाने वाला मूर्ख और धोखा देने वाला ठग क्यों कहलाता है? जब सब कुछ धोखा ही धोखा है, और धोखे से अलग रहना ईश्वर की भी सामर्थ्य से भी दूर है, तथा धोखे ही के कारण संसार का चर्खा पिन्न-पिन्न चला जाता है, नहीं तो ढिच्चर-ढिच्चर होने लगे, बरंच रही न जाय तो फिर इस शब्द का स्मरण वा श्रवण करते ही आप की नाक भौंह क्यों सुकुड़ जाती है?
4. परोपकार को कोई बुरा नहीं कह सकता, पर किसी को सब कुछ उठा दीजिए तो क्या भीख माँग के प्रतिष्ठा, अथवा चोरी करके धर्म खोइएगा वा भूखों मर के आत्महत्या के पाप भागी होडएगा । यों ही किसी को सताना अच्छा नहीं कहा जाता है. पर यदि कोई संसार का अनिष्ट करता हो, उसे राजा से दंड दिलवाइए वा आप ही उसका दमन कर दीजिए तो अनेक लोगों के हित का पुण्यलाभ होगा।

व्याख्या का उदाहरण

गद्यांश: जो सर्वथा निराकार होने पर भी मत्स्य, कच्छपादि रूपों में प्रकट होता है, और शुद्ध निर्विकार कहलाने पर भी नाना प्रकार की लीला किया करता है। वह धोखे का पुतला नहीं है तो क्या है? हम आदर के मारे उसे भ्रम से रहित कहते हैं, पर जिसके विषय में कोई निश्चयपूर्वक 'इदमित्थंश कही नहीं सकता, जिसका सारा भेद स्पष्ट रूप से कोई जान ही नहीं सकता वह निर्धम या भ्रमरहित क्यों कर कहा जा सकता है। शुद्ध निर्धम वह कहलाता है जिसके विषय में भ्रम का आरोप भी न हो सके। पर उसके तो अस्तित्व तक में नास्तिकों को संदेह और आस्तिकों को निश्चित ज्ञान का अभाव रहता है, फिर वह निर्धम कैसा? और जब वही भ्रम से पूर्ण है तब उसके बनाए संसार में भ्रम अर्थात् धोखे का अभाव कहाँ?

संदर्भ-संकेत

भारतेंदु युग के लेखकों में प्रतापनारायण मिश्र का प्रमुख स्थान है। उपर्युक्त गद्यांश उनके निबंध 'धोखा' से उद्धत है। धोखा एक मनोभाव है इस पर मिश्रजी ने निबंध में विचार किया है। उपर्युक्त अंश में वे इस शब्द पर ईश्वर संबंधी संकल्पना के संदर्भ में विचार करते हैं। वह संकल्पना क्या है इसे समझते हुए निबंध में कही गई बात का मर्म समझा जा सकता है।

व्याख्या-संकेत

उक्त अंश में लेखक ने साकार और निराकार की संकल्पना पर टिप्पणी की है। भारतीय परंपरा में ईश्वर के दो रूप माने जाते हैं : एक, साकार यानी जो विभिन्न प्राणी रूप धारण कर सकता है जैसे ब्रह्म या विष्णु के विभिन्न अवतारों का उल्लेख किया जाता है। दो, निराकार यानी जिसका कोई रूप, कोई आकार नहीं है। मिश्र जी कहते हैं कि यदि वह निराकार है तो फिर विभिन्न रूप कैसे धारण कर सकता है और यदि वह साकार है तो उसे निराकार कहने का क्या अर्थ। इसी प्रकार ईश्वर को निर्विकार भी कहा गया है यानी वह सभी सांसारिक विकारों से परे है। लेकिन साकार रूप मानने पर अवतार लेता है और विभिन्न लीलाएँ भी करता है। इसी अंतर्विरोध को देखकर लेखक यह प्रश्न उठाता है कि क्या ईश्वर के यह भिन्न-भिन्न रूप देखकर उसे 'धोखे का पुतला' नहीं कहा जा सकता?

निबन्ध: धोखा
(प्रताप नारायण मिश्र)

दुसरा प्रश्न स्वयं ईश्वर के अस्तित्व के बारे में उठाते हैं। हम सभी जानते हैं कि ईश्वर है या नहीं इसके बारे में सभ्यता के आरंभ से ही विवाद रहा है। आस्तिक और नास्तिक की दो श्रेणियाँ इसी आधार

टिप्पणी

पर बनी है। जो ईश्वर के अस्तित्व को मानते हैं आस्तिक कहलाते हैं और जो नहीं मानते वे नास्तिक कहलाते हैं। जब ईश्वर का अस्तित्व भी संदेह से परे नहीं है तो उसे निर्धम कैसे कहा जा सकता है या 'उसके बनाए संसार' को भी भ्रम या धोखे से रहित कैसे माना जा सकता है?

उपर्युक्त गद्यांश में मिश्रजी इसी बात पर बल देते हैं कि धोखे से परे कुछ नहीं है न ईश्वर और न यह संसार। इस प्रकार धोखे की सर्वव्यापकता को वे प्रमाणित करते हैं। विशेष-संकेत दर्शनशास्त्र में प्रस्तुत संकल्पनाओ का ऐसा सरल और तार्किक विवेचन मिश्रजी के लेखन की खास पहचान है। उसी के अनुरूप उन्होंने शब्दावली और वाक्यों का प्रयोग किया द्य है। आप इस पहलू पर भी टिप्पणी कर सकते हैं।

1.5 मूलपाठ : निबंध (धोखा)

इन दो अक्षरों में भी न जाने कितनी शक्ति है कि इनकी लपेट से बचना यदि निरा असंभव न हो तो भी महा कठिन तो अवश्य है। जब कि भगवान रामचंद्र ने मारीच राक्षस को सुवर्ण मृग समझ लिया था तो हमारी आपकी क्या सामर्थ्य है जो धोखा न खायं? बरंच ऐसी ऐसी कथाओं से विदित होता है कि स्वयं ईश्वर भी केवल निराकार निर्विकार ही रहने की दशा में इससे प्रथक रहता है सो भी एक रीति से नहीं ही रहता, क्योंकि उसके मुख्य कामों में से एक काम सृष्टि का उत्पादन करना है, उसके लिए उसे अपनी माया का आश्रय लेना पड़ता है। और माया, भ्रम, छल इत्यादि धोखे ही के पर्याय हैं, इस रीति से यदि हम कहें कि ईश्वर भी धोखे से अलग नहीं है तो अयुक्त न होगा। क्योंकि ऐसी दशा में यदि वह धोखा खाता नहीं तो धोखे से काम अवश्य लेता है, जिसे दूसरे शब्दों में कह सकते है कि माया का प्रपंच फैलाता है वा धोखे की टट्टी खड़ा करता है।

अत: सबसे प्रथक रहने वाला ईश्वर भी ऐसा नहीं है जिसके विषय में यह कहने का स्थान हो कि वह धोखे से अलग है, बरंच धोखे से पूर्ण उसे कह सकते हैं, क्योंकि वेदों में उसे 'आश्चर्योस्य वक्ता शचित्रन्देवानमुदगातनीक' इत्यादि कहा है और आश्चर्य तथा चित्रत्व को मोटी भाषा में धोखा ही कहते हैं, अथवा अवतार धारण की दशा में उसका नाम माया-बपु-धारी होता है, जिसका अर्थ है - धोखे का पुतला, और सच भी यही है। जो सर्वथा निराकार होने पर भी मत्स्य, कच्छपादि रूपों में प्रकट होता है, और शुद्ध निर्विकार कहलाने पर भी नाना प्रकार की लीला किया करता है। वह धोखे का पुतला नहीं है तो क्या है? हम आदर के मारे उसे भ्रम से रहित कहते हैं, पर जिसके विषय में कोई निश्चयपूर्वक 'इदमित्यं' कही नहीं सकता, जिसका सारा भेद स्पष्ट रूप से कोई जान ही नहीं सकता वह निर्धम या भ्रमरहित क्यों कर कहा जा सकता है। शुद्ध निर्धम वह कहलाता है जिसके विषय में भ्रम का आरोप भी न हो सके। पर उसके तो अस्तित्व तक में नास्तिकों को संदेह और आस्तिकों को निश्चित ज्ञान का अभाव रहता है, फिर वह निर्धम कैसा? और जब वही भ्रम से पूर्ण है तब उसके बनाए संसार में भ्रम अर्थात् धोखे का अभाव कहाँ?

वेदांती लोग जगत् को निरा. भ्रम समझते हैं। यहाँ तक कि एक महात्मा ने किसी जिज्ञासु को भली भाँति समझा दिया था कि विश्व में जो कुछ है, और जो कुछ होता है, सब भ्रम है। किंतु यह समझाने के कुछ ही दिन उपरांत उनके किसी प्रिय व्यक्ति का प्राणांत हो गया, जिसके शोक में वह फूट-फूट कर रोने लगे। इस पर शिष्य ने आश्चर्य में आकर पूछा कि आप तो सब बातों को भ्रमात्मक मानते हैं, फिर जान बूझकर रोते क्यों हैं? उसके उत्तर में उन्होंने कहा कि रोना भी भ्रम ही है। सच है, भ्रमोत्पादक भ्रमस्वरूप भगवान के बनाए हुए भव (संसार) में जो कुछ है भ्रम ही है। जब तक भ्रम है ली तक, संसार है बरंच संसार का स्वामी भी तभी तक है, फिर कुछ भी नहीं ! और कौन जाने हो तो हमें

निबन्ध: धोखा
(प्रताप नारायण मिश्र)

टिप्पणी

उससे कोई काम नहीं! परमेश्वर सबका भ्रम बनाए रखे इसी में सब कुछ है। जहाँ भरम खुल गया वहीं लाख की भलमंसी खाक में मिल जाती है। जो लोग पूरे ब्रह्मज्ञानी बन कर संसार को सचमुच माया की कल्पना मान बैठते हैं वे अपनी भ्रमात्मक बुद्धि से चाहे अपने तुच्छ जीवन को साक्षात् सर्वेश्वर मान के सर्वथा सुखी हो जाने का धोखा खाया करें; पर संसार के किसी काम के नहीं रह जाते हैं, बरंच निरे अकर्ता, अभोक्ता बनने की उमंग में अकर्मण्य और 'नारि नारि सब एक है जस मेहरि तस मायश् इत्यादि सिद्धांतों के मारे अपना तथा दूसरों का जो अनिष्ट न कर बैठे वही थोड़ा है, क्योंकि लोक और परलोक का मजा भी धोखे ही में पड़े रहने से प्राप्त होता है। बहुत ज्ञान छांटना सत्यानाशी की जड़ है! ज्ञान की दृष्टि से देखें तो आपका शरीर मलमूत्र, मांस मज्जादि, घृणास्पद पदार्थों का विकारमात्र है, पर हम उसे प्रीति का पात्र समझते हैं और दर्शन स्पर्शनादि से आनंद लाभ करते हैं।

हमको वास्तव में इतनी जानकारी भी नहीं है कि हमारे शिर में कितने बाल हैं वा एक मिट्टी के गोले का सिरा कहाँ पर है, किंतु आप हमें बड़ा भारी विज्ञ और सुलेखक समझते हैं तथा हमारी लेखनी या जिहवा की कारीगरी देख-देख कर सुख प्राप्त करते हैं। विचार कर देखिए तो धन जन इत्यादि पर किसी का कोई स्वत्व नहीं है, इस क्षण हमारे काम आ रहे हैं, क्षण ही भर के उपरांत न जाने किसके हाथ में वा किस दशा में पड के हमारे पक्ष में कैसे हो जायं, और मान भी लें कि इनका वियोग कभी न होगा तो भी हमें क्या? आखिर एक दिन मरना है, और 'मंदि गई आंखें तब लाखें केहि काम की'। पर यदि हम ऐसा समझ कर सबसे संबंध तोड़ दें तो सारी पूंजी गंवा कर निरे मूर्ख कहलावें, स्त्री पुत्रादि का प्रबंध न करके उनका जीवन नष्ट करने का पाप मडियावें । 'ना हम काह के कोऊ ना हमाराश का उदाहरण बनके सब प्रकार के सुख सुविधा, सुयश से वंचित रह जावें ! इतना ही नहीं, बरंच और भी सोच कर देखिए तो किसी को कुछ भी खबर नहीं है कि मरने के पीछे जीव की क्या दशा होगी।

बहुतेरों का सिद्धांत यह भी है कि दशा किसकी होगी, जीव तो कोई पदार्थ ही नहीं है। घड़ी के जब तक सब पुरजे दुरुस्त हैं, और ठीक-ठीक लगे हुए हैं तभी तक उस में खट खट, टन टन आवाज आ रही है, जहाँ उसके पुरजों का लगाव बिगड़ा वहीं न उसकी गति है, न शब्द है। ऐसे ही शरीर का क्रम जब तक ठीक-ठीक बना हुआ है, मुख से शब्द और मन से भाव तथा इन्द्रियों से कर्म का प्राकट्य होता रहता है, जहाँ इसके क्रम में व्यक्तिक्रम हुआ, वहीं सब खेल बिगड़ गया, बस फिर कुछ नहीं, कैसा जीव? कैसी आत्मा? एक रीति से यह कहना झूठ भी नहीं जान पड़ता, क्योंकि जिसके अस्तित्व का कोई प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं है उसके विषय में अंततोगत्वा यों ही कहा जा सकता है ! इसी प्रकार स्वर्ग नर्कादि के सुख द:खादि का होना भी नास्तिकों ही के मत से नहीं. किंत बडे बडे आस्तिकों के सिद्धांत से भी 'अविदितिसुखदुख निर्विशेषस्वरूप' के अतिरिक्त कुछ समझ में नहीं आता।

स्कूल में हमने भी सारा भूगोल और खगोल पढ़ डाला है, पर नर्क और बैकुंठ का पता कहीं नहीं पाया। किंतु भय और लालच को छोड़ दें तो बुरे कामों से घृणा और सत्कर्मों से रुचि न रख कर भी तो अपना अथच पराया अनिष्ट ही करेंगे। ऐसी-ऐसी बातें सोचने से गोस्वामी तुलसीदास जी का 'गो गोचर जहं लगि मन जाई, सो सच माया जानेहु भाई और भी सूरदास जी का श्मायामोहिनी मन हरन' कहना प्रत्यक्षतया सच्चा जान पड़ता है। फिर हम नहीं जानते कि धोखे को लोग क्यों बुरा समझते हैं? धोखा खाने वाला मूर्ख और धोखा देने वाला ठग क्यों कहलाता है? जब सब कुछ धोखा ही धोखा है, और धोखे से अलग रहना ईश्वर की भी सामर्थ्य से भी दूर है, तथा धोखे ही के कारण संसार का चर्खा पिन्न-पिन्न चला जाता है, नहीं तो ढिच्चर-ढिच्चर होने लगे, बरंच रही न जाय तो फिर इस शब्द का स्मरण वा श्रवण करते ही आप की नाक भौंह क्यों सुकुड़ जाती है? इसके उत्तर में हम तो यही कहेंगे कि साधारणत: जो धोखा खाता है वह अपना कुछ न कुछ गंवा बैठता है, और जो धोखा देता

टिप्पणी

है उस की एक न एक दिन कलई खुले बिना नहीं रहती है और हानि सहना वा प्रतिष्ठा खोना दोनों बातें बुरी हैं, जो बहुधा इसके संबंध में हो ही जाया करती हैं।

इसी से साधारण श्रेणी के लोग धोखे को अच्छा नहीं समझते, यद्यपि उससे बच नहीं सकते, क्योकि जैसे काजल की कोठरी में रहने वाला बेदाग नहीं रह सकता वैसे ही भ्रमात्मक भवसागर में रहने वाले अल्प-सामर्थी जीव का भ्रम से सर्वथा बचा रहना असंभव है, और जो जिससे बच नहीं सकता उस का उस की निंदा करना नीतिविरुद्ध है। पर क्या कीजिए, कच्ची खोपड़ी के मनुष्य को प्राचीन प्राज्ञ गण अल्पज्ञ कह गए हैं, जिसका लक्षण ही है कि आगा पीछा सोचे बिना जो मुँह पर आवे कह डालना और जो जी में समावे कर उठना, नहीं तो कोई काम वा वस्तु वास्तव में भली अथवा बरी नहीं होती केवल उसके व्यवहार का नियम बनने बिगड़ने से बनाव बिगाड हो जाया करता है।

परोपकार को कोई बुरा नहीं कह सकता, पर किसी को सब कुछ उठा दीजिए तो क्या भीख माँग के प्रतिष्ठा, अथवा चोरी करके धर्म खोइएगा. वा भूखों मर के आत्महत्या के पाप भागी होइएगा ! यों ही किसी को सताना अच्छा नहीं कहा जाता है, पर यदि कोई संसार का अनिष्ट करता हो, उसे राजा से दंड दिलवाइए वा आप ही उसका दमन कर दीजिए तो अनेक लोगों के हित का पुण्यलाभ होगा। घी बड़ा पुष्टिकारक होता है, पर दो सेर पी लीजिए तो उठने बैठन की शक्ति न रहेगी। और संखिया, सींगिया आदि प्रत्यक्ष विष है, किंतु उचित रीति से शोध कर सेवन कीजिए तो बहुत से रोग दोख दूर हो जायेंगे। यही लेखा-धोखे का भी है। दो एक बार धोखा खा के धोखेबाजी की हिकमतें सीख लो, और कुछ अपनी ओर से झपकी फुदनी जोड़ कर 'उसी की जूती उसी का सिर' कर दिखाओ तो बड़े भारी अनुभवशाली बरंच 'गुरु गुड़ ही रहा चेला शक्कर हो गया' का जीवित उदाहरण कहलाओगे। यदि इतना न हो सके तो उसे पास न फटकने दो तो भी भविष्य के लिए हानि और कष्ट से बच जाओगे।

यों ही किसी को धोखा देना हो तो इस रीति से दो कि तुम्हारी चालबाजी कोई भांप न सके, और तुम्हारा बलिपशु यदि किसी कारण से तुम्हारे हथखंडे ताड़ भी जाय तो किसी से प्रकाशित करने के काम का न रहे। फिर बस अपनी चतुरता के मधुर फल को मूरों के आंसू तथा गुरू-घंटालों के धन्यवाद की वर्षा के जल से धो और स्वादुपूर्वक खा! इन दोनों रीतियों से धोखा बुरा नहीं है। अगले लोग कह गए हैं कि आदमी कुछ खो के सीखता है, अर्थात् धोखा खाए बिना अक्किल नहीं आती, और बेईमानी तथा नीतिकुशलता में इतना ही भेद है कि जाहिर हो जाय तो बेईमानी कहलाती है और छिपी रहै तो बुद्धिमानी है।

हमें आशा है कि इतने लिखने से आप धोखे का तत्व यदि निरे खेत के धोखे न हों, मनुष्य हों तो समझ गए होंगे। पर अपनी ओर से इतना और समझा देना भी हम उचित समझते हैं कि धोखा खा के धोखेबाज का पहिचानना साधारण समझ वालों का काम है। इस से जो लोग अपनी भाषा भोजन, भेष, भाव और भ्रातृत्व को छोड़ कर आप से भी छुड़वाया चाहते हों उनको समझे रहिए कि स्वयं धोखा खाए हुए हैं और दूसरों को धोखा दिया चाहते हैं। इससे ऐसों से बचना परम कर्तव्य है, और जो पुरुष एवं पदार्थ अपने न हों व देखने में चाहे जैसे सुशील और सुंदर हों, पर विश्वास के पात्र नहीं है, उनसे धोखा हो जाना असंभव नहीं है। बस, इतना स्मरण रखिएगा तो धोखे से उत्पन्न होने वाली विपत्तियों से बचे रहिएगा। नहीं तो हमें क्या, अपनी कुमति का फल अपने ही आंसुओं से धो और खा, क्योंकि जो हिंदू हो कर ब्रह्मवाक्य नहीं मानता वह धोखा खाता है।

निबन्ध: धोखा
(प्रताप नारायण मिश्र)

टिप्पणी

1.6 अभ्यास प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. प्रताप नारायण मिश्र द्वारा रचित निबंध धोखा का मूल उद्देश्य क्या है? स्पष्ट करें।
2. धोखा और भ्रम को स्पष्ट करें। 'धोखा' में प्रतापनारायण मिश्र के भावपरक भावों को दर्शायें।
3. ईश्वर के अस्तित्व के बारे में धोखा निबंध में प्रताप नारायण मिश्र ने क्या संदेश दिया है?
4. भारतेन्दु के जीवन पद प्रकाश डालें।
5. भारतेन्दु के साहित्यिक योगदान को स्पष्ट रूप में समझाऐं।

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. निबंध 'धोखा' की रचना के बारे में समझाऐं।
2. निबंध 'धोखा' की व्याख्या के प्रमुख अंश बताऐं।
3. 'धोखा' की व्याख्या का संदर्भ संकेत बताऐं।
4. निबंध 'धोखा' की संक्षिप्त में व्याख्या करें।
5. 'धोखा' की व्याख्या का संकेत समझाऐं।

♦♦♦♦♦

इकाई 2

निबन्धः कुटज
(हजारी प्रसाद द्विवेदी)

पाठ-संरचना

2.1 उद्देश्य
2.2 प्रस्तावना
2.3 हजारी प्रसाद द्विवेदी और उनका निबंध लेखन
2.4 कुटज की अंतर्वस्तु
2.5 ललित निबंध के रूप में कुटज
2.6 कुटज की भाषा-शैली
2.7 सारांश
2.8 अभ्यास प्रश्न

टिप्पणी

2.1 उद्देश्य

हिंदी निबंध परंपरा में आचार्य रामचंद्र शुक्ल के बाद सबसे महत्वपूर्ण नाम आचार्य हजारी प्रसाद द्वि वेदी का ही है। शुक्लजी के निबंधों से भिन्न ललित निबंध की परंपरा की शुरुआत करने और उसे श्रेष्ठता के शिखर पर पहुँचाने का श्रेय उन्हें ही हैं। इस इकाई में हम द्विवेदीजी के निबंध लेखन की विशेषताओं के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे।

द्विवेदीजी का प्रख्यात निबंध कुटज आपके पाठ्यक्रम में शामिल किया गया है। कुटज पहाड़ों पर उगने वाला एक पौधा है। उसके गुण और सौंदर्य का वर्णन करते हुए द्विवेदीजी मानव स्वभाव और मानव जीवन के कई पहलुओं पर सार्थक टिप्पणियाँ करते हैं। इकाई में उक्त निबंध की विषयवस्तु का विवेचन करते हुए उसके प्रतिपाद्य पर भी प्रकाश डाला गया है।

कुटज ललित निबंध है और ललित निबंध की विशेषताओं के संदर्भ में इसकी विशेषताओं को भी पाठ लेखक ने उजागर किया है। ललित निबंध में भाषा और शैली का केंद्रीय महत्व होता है। इस खंड में आपने जो भी निबंध पढ़ें हैं उनसे कुटज की विशिष्टता की ओर आपका ध्यान जरूर गया होगा। इस इकाई में आप इस निबंध की भाषा और शैली की विशेषताओं का भी ज्ञान प्राप्त करेंगे।

2.2 प्रस्तावना

प्रतापनारायण मिश्र का निबंध धोखा और रामचंद्र शुक्ल का निबंध लोभ और प्रीति के संबंध में पढ़ी गई इकाइयों से आपको दो भिन्न तरह के निबंध रूपों की जानकारी प्राप्त हुई है। इस इकाई में आप द्विवेदीजी के निबंध कुटज के बारे में पढ़ने जा रहे हैं। कुटज ललित निबंध है। यह शिवालिक पर्वत श्रृंखला पर मिलने वाला अल्प परिचित पौधा है। इसी के बहाने द्विवेदीजी अपनी चिरपरिचित शैली में अपनी बात कहते चलते हैं। पढ़ते हुए आपको पहले तो यह आभास होगा कि वे सिर्फ कुटज की बात कर रहे हैं, लेकिन धीरे-धीरे आपको एहसास होगा कि कुटज तो बहाना है। वे तो मनुष्य के बारे में, उसके जीवन, उसके संघर्ष और उसके भविष्य के बारे में बात कर रहे हैं। बातचीत करने की यह शैली इतनी आत्मीय और हृदयस्पशी है कि हम चाहते हुए भी उसके प्रभाव से अछूते नहीं रह पाते।

ललित निबंध में लेखकीय व्यक्तित्व का जो प्रस्फुटन होता है, वैसा प्रस्फुटन किसी अन्य निबंध में नहीं होता। द्विवेदीजी के इस निबंध में उनका पांडित्य, उनकी विशाल हृदयता, उदारता, मानवतावादी दृष्टि, जिंदादिली का आभास मिलता रहता है। यद्यपि इकाई में इस पक्ष पर अलग से विचार नहीं किया गया है, लेकिन निबंध और इकाई को पढ़ते हुए आप उसकी पहचान आसानी से कर लेंगे। ललित निबंध में शैली का सौंदर्य हमारा ध्यान आकृष्ट करता है। लेखक की रचनात्मकता का जैसा प्रमाण ललित निबंध में मिलता है, वैसा अन्यत्र नहीं। उसमें इतनी तरह की शैलियाँ और भाषा के ऐसे मनोहारी रूप की छटा दिखाई देती है कि निबंध के रस में पाठक सराबोर हो जाता है। इस निबंध में आप कुटज की भाषा शैली की विशेषताओं का अध्ययन करते हुए इसका प्रमाण प्राप्त करेंगे। इकाई पढ़ने से पूर्व आप निबंध अवश्य पढ़ लें अन्यथा इकाई में कही गई बातो का पूरा मंतव्य स्पष्ट नहीं होगा।

2.3 हजारी प्रसाद द्विवेदी और उनका निबंध लेखन

हजारी प्रसाद द्विवेदी हिंदी साहित्य के प्रख्यात रचनाकार और आलोचक हैं। हिंदी जगत में द्विवेदी जी की प्रतिष्ठा अन्वेषक, इतिहासकार, आलोचक, निबंधकार तथा उपन्यासकार के रूप में है। निबंध-लेखन के क्षेत्र में उनकी विशिष्ट पहचान है। वे निबंध को 'व्यक्ति की स्वाधीन चिंता की उपज' मानते हैं। द्विवेदी जी का अध्ययन व्यापक है तथा अध्ययन का यह विस्तार उनके लेखन में सर्वत्र व्याप्त है।

निबन्ध: कुटज
(हजारी प्रसाद द्विवेदी)

टिप्पणी

निबंध लेखक के रूप में उनके व्यक्तित्व की छाप हर जगह दिखाई देती है। उनकी आत्म व्यंजना के विविध रूप उनके ललित निबंधों का प्राण है। 'अशोक के फूल', 'कल्पलता', 'विचार और वितर्क', 'विचार प्रवाह' और 'कुटज' द्विवेदीजी के निबंध संग्रह हैं। हजारी प्रसाद द्विवेदी का लेखन सोद्देश्य है। वे साहित्य-मात्र को मनुष्य के संदर्भ में देखते हैं। द्विवेदीजी के अनुसार, 'साहित्य, वस्तुतः मनुष्य का वह उच्छलित आनंद है जो उसके अंतर में अँटाए नहीं अँट सका था।' इस आनंद का आधार वे 'एकत्व की अनुभूतिश को मानते हैं। वे मानते हैं कि मनुष्य की चरम मनुष्यता - एकत्व की अनुभूति-संवेदना, के आधार पर ही संभव है। यही संवेदना ललित कलाओं का प्राण है। द्विवेदीजी मानते हैं कि, मनुष्य ही साहित्य का लक्ष्य है। वे समस्त साहित्य में मानवीय चेतना को लक्षित करते हैं। द्विवेदीजी पर रवींद्रनाथ ठाकुर की मान्यताओं का प्रभाव भी पड़ा है। द्विवेदीजी ने अपने साहित्य में जिस मनुष्य की प्रतिष्ठा की है वह सामजिक मनुष्य है।

निबंध को द्विवेदीजी व्यक्ति की स्वाधीन चिंता की उपज मानते हैं। इसे स्पष्ट करते हुए वे लिखते हैं, 'निबंधों के व्यक्तिगत होने का अर्थ यह नहीं है कि उसमें विचार श्रृंखला न हो। ऐसा होने से तो वे प्रलाप कहे जाएँगे।'

द्विवेदीजी के अनुसार, निबंध लेखक विषय के संबंध में अपने विचार प्रस्तुत करते हुए वैज्ञानिक जैसी तटस्थता का पालन नहीं कर सकता है। वह अपनी 'निजता' बनाए रखता है। द्विवेदीजी के निबंधों में वार्तालाप, व्याख्यान गप्प और स्वगत-चिंतन की विशेषताएँ समाहित हैं विशेषताओं के अतिरिक्त द्वि वेदीजी की मान्यताओं में सामाजिकता मनुष्य की असीम शक्ति और आस्था का समावेश भी है। उनके निबंधों में मनष्य के सांस्कतिक विकास की आकांक्षा है। मनुष्य की जययात्रा के प्रति उन्हें असीम विश्वास है। सम्पूर्ण भारतीय साहित्य, धर्म, कला एवं संस्कृति का अनशीलन करते हए वे बार-बार यह घोषित करते हैं कि यह सब मनुष्य को पूर्ण बनाने के साधन मात्र हैं। वे साहित्य के लक्ष्य को स्पष्ट करते हुए मानते हैं कि, साहित्य का लक्ष्य, मनुष्यता की सिद्धि, उच्चतम मूल्यों की उपलब्धि और मंगल-विधान है।

द्विवेदी जी के ललित निबंधों में उनके व्यक्तित्व की भंगिमा, उनके मन का उच्छवास और उनके भीतर की आर्द्रता व्यक्त हुई है। 'अशोक के फूल', 'कुटज', 'बसंत आ गया है। आदि निबंधों में विषय के साथ-साथ शैली की मोहकता हमें आकर्षित करती है। इस शैली में लालित्य भी है और इसके साथ ही द्विवेदी जी के सहज व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति भी। ऋतुओं, पुष्पों, वृक्षों, पर्वो और स्थानों के पीछे मानव इतिहास छिपा हुआ है। इनकी चर्चा द्वि वेदी जी बड़े मनोयोग से करते हैं। 'इनकी चर्चा करते हुए द्विवेदी जी कभी आई चित्त से, कभी उदास होकर कभी विच्छल मन से, कभी क्षोभ के साथ, अतीत में, इतिहास के खंडहरों में पाठक साथ लेकर रमने लगते हैं और पाठक कभी उनके ज्ञान से चकित होकर, कभी अतीत में खोकर,कभी उनकी व्याख्याओं और अनुमानों से तुष्ट होता हुआ अद्‌भुत आनंद का अनुभव करता है।" (डा. रामचंद्र तिवारी)। द्विवेदी जी के निबंध विचार और अनुभूति के संगम है। द्विवेदीजी का कथन है कि - 'मनुष्य थका है, पर रूका नहीं है।' द्विवेदीजी मनुष्य के गतिशील तत्वों के पारखी हैं। वे मानव-सत्य को प्रतिष्ठित करने वाले साहित्यकार हैं। उनका ज्ञान विस्तृत है। ललित निबंधों में उनके व्यक्तित्व का प्रकाशन पूर्ण रूप से हुआ है।

2.4 'कुटज' की अंतर्वस्तु

'कुटज' ललित निबंध है। इसका केंद्र कुटज नाम का वृक्ष है जो पुष्पों से भरा हुआ होता है। हजारी प्रसाद द्विवेदी के इस निबंध को उनकी आत्माभिव्यक्ति के रूप में अधिक जाना जाता है। कुटज के

निबन्ध: कुटज
(हजारी प्रसाद द्विवेदी)

टिप्पणी

माध्यम से द्विवेदीजी बहुत से महत्वपूर्ण बिंदुओं की व्यंजना करते चलते हैं। द्विवेदीजी के पास ज्ञान का भंडार है। विशेषत: संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और बंगला भाषा, साहित्य पर वे अधिकार-पूर्वक लिखते रहे हैं। वे संस्कृत के तो विद्वान थे ही किंतु उनका वैशिष्टय ऐसा कोरा पाण्डित्य नहीं है जो शुष्क होता है। वे साहित्य की सरसता के पारखी हैं और सर्जना के क्षेत्र में वे उसका भरपूर उपयोग करते हैं। कुटज या 'अशोक के फूल' अथवा 'देवदारू' जैसे वृक्षों को लेकर लिखे गए निबंधों में नीरस पाण्डित्य न होकर द्विवेदीजी के ललित और उन्मुक्त भावों की प्रवाहपूर्ण भाषा में अभिव्यक्ति है। द्विवेदीजी की निजता का प्रकाशन मोहक और ज्ञानवर्धक है। कुटज के नाम, रूप, उत्पत्ति आदि की शास्त्रीय अवधारणाओं के प्रकाशन के साथ वे उसे जीवंत रूप में प्रस्तुत करते हैं और कुटज को एक नया व्यक्तित्व प्रदान करते हैं। तब कुटज वृक्ष न होकर व्यक्ति-रूप में रूपांतरित होता हुआ प्रतीत होता है। यह रूपांतरण पाठक को जब दृष्टिगत होने लगता है तब वह भाव-विभोर होकर रसमग्न हो जाता है।

प्रारंभ में द्विवेदीजी उस स्थल विशेष को प्रस्तुत करते हैं जहाँ कुटज उगता है, पनषता है और पुष्पित पल्लवित होता है। यह स्थान है शिवालिक-श्रृंखला। हिमालय की निचली पहाड़ियाँ।

वे शिवालिक का अर्थ बतलाते हुए लिखते हैं- 'शिवालिक' या शिव के जटाजूट का निचला हिस्सा।' 'शिव की लटियायी जटा ही इतनी सूखी, नीरस और कठोर हो सकती है।' यह पर्वत श्रृंखला शिव के जटाजूट के निचले हिस्से का प्रतिनिधित्व करती है। आगे 'हिमालय' और 'पर्वत' के वैशिष्टय को प्रस्तुत करते हुए वे कालिदास का स्मरण करते हुए कहते हैं : यथा - 'पूर्व और अपर समुद्र-महोदधि और आकर-दोनों को दोनों भुजाओं से थाहता हुआ हिमालय प्रथ्वी का मानदंडश कहा जाए तो गलत क्या है। हिमालय की शिवालिक श्रृंखला की भूमि का स्वरूप वर्णन करते हुए वे विषय की पृष्ठभूमि बताते हैं। जहाँ कुटज उगता है उस भूमि पर हरियाली नहीं है, दूब तक सूख गई है, काली-काली चट्टानों के बीच थोड़ी-थोड़ी रेती है। यहीं कुटज उगता है। द्विवेदीजी प्रश्न करते हैं - 'रस कहाँ है? अब कुटज पेड़ का वर्णन देखिए - ये जो ठिगने से लेकिन शानदार दरख्त गमी की भयंकर मार खा खा कर और भूख-प्यास की निरंतर चोट सहकर भी जी रहे हैं, इन्हें क्या कहूँ? सिर्फ जी ही नहीं रहे हैं, हँस भी रहे हैं। फिर द्विवेदीजी दो प्रश्न करते हैं - 'बेहया हैं क्या? या मस्तमौला?' प्रश्न का उत्तर पाठकों पर छोडकर द्विवेदीजी व्यंग भी करते हैं और वस्त का वैशिष्टय भी स्पष्ट करते हैं। यथा - 'कभी कभी जो लोग ऊपर से बेहया दिखते हैं, उनकी जड़ें काफी गहरी पैठी रहती हैं। ये भी पाषाण की छाती फाड़कर न जाने किस अतल गहवर से अपना भोग्य खींच लाते हैं।' अर्थात् कुटज ऊपर से ही बेहया प्रतीत होता है पर उसकी जड़ें गहरी हैं और इस प्रश्न का कि रस कहाँ है : उत्तर है - 'पाषाण की छाती के बहुत नीचे। इस रस को ये वृक्ष जाने कहां से खींच लाते हैं, यही इनका भोग्य है। कुटज का स्वरूप अद्‌भुत है। ये वृक्ष इतनी कठिनाई के बीच भी मुस्कराते रहते हैं, ये द्वंद्वातीत हैं, अलमस्त हैं। इन वृक्षों को हम नहीं जानते। न नाम, न कुल, न शील, पर लगता है ये हमें अनादि काल से जानते हैं। द्विवेदीजी इस पहचान के बाद कुटज के नामरूप पर विस्तृत चर्चा करते हुए नाम और रूप की व्याख्या और तुलना करते हैं। बड़ा कौन है? रूप या नाम? द्विवेदीजी सूत्र प्रस्तुत करते हुए कहते हैं 'नाम इसलिए बड़ा होता है कि उसे सामाजिक स्वीकृति मिली होती है।' रूप व्यक्ति-सत्य है, नाम समाज सत्य। वे बाद में अपने विषय का विशद विस्तार करते हैं। निबंध का विषय है कुटज किंतु वस्तु विवेचन में उनकी ज्ञान-दृष्टि है। अंतत: वे घोषणा करते हैं - 'संस्कृत साहित्य का बहुत परिचित, किंतु कवियों द्वारा अवमानित, यह छोटा सा शानदार वृक्ष कुटज है।'

हजारी प्रसाद द्विवेदी बहुत बड़े भाषाशास्त्री भी थे, फलत: कुटज शब्द की व्युत्पत्ति का भी वे नाना प्रकार से आकलन करते हैं। गिरिकूट पर उत्पन्न होने के कारण यह कुटज है। अर्थात गिरिकूट पर जन्म

निबन्ध: कुटज
(हजारी प्रसाद द्विवेदी)

टिप्पणी

लेने वाला। एक दूसरी व्युत्पत्ति है, कुटज अर्थात् जो श्कुट से पैदा हुआ है। कुट के दो अर्थ हैं : (1) घड़ा, (2) घर। तब क्या कुट घड़े से उत्पन्न है? घड़ा क्या गमला है? हो तो भी कुट का अर्थ इन दोनों से मेल नहीं खाता। संस्कृत में श्कुटहा रिका और, 'कुटकारिका', 'कुटनी', 'कुट्टनी' शब्द हैं जो दासी के लिए प्रयुक्त होते हैं, इसी तरह 'कुटिया या कुटीर' शब्द भी हैं। संस्कृत में कुटज 'कुटच और 'कूटज' शब्द भी मिल जाते हैं किंतु इन सबसे कुटज वृक्ष का अर्थ असम्बद्ध ही रह जाता है। द्विवेदीजी इसे आग्नेय भाषा परिवार का मानते हैं जो आस्ट्रो-एशियाटिक परिवार का नाम होगा। अब इसे 'कोल परिवार' की भाषा कहा जाता है। हो सकता है यह शब्द इस परिवार का हो। इस शब्द का अर्थ पूरी तरह से द्विवेदीजी भी नहीं बता पाए हैं। वे इतना अवश्य मानते हैं कि -यह शब्द 'आर्य जाति का तो नहीं जान पड़ता।' संस्कृत में दूसरी भाषा के शब्द के प्रवेश के इस कथन के द्वारा वे संस्कृतियों के समन्वय की स्वाभाविक प्रक्रिया का प्रमाण प्रस्तुत करते हैं।

चर्चा के बाद लेखक का सर्जनात्मक रूप फिर सामने आने लगता है। वे कुटज की विशेषताओं का वर्णन करते हुए पुनः ललित भाव और ललित भाषा के साथ प्रवहमान हो उठते हैं। कुटज की पहली विशेषता है, 'अपराजेय जीवनी शक्ति।' यह नाम-रूप दोनों में है। कितने ही नाम आए और चल गए पर संस्कृत साहित्य में यह नाम जम कर बैठा है। कालिंदास को मेघ की अर्चना के लिए कुटज पुष्प ही तो मिले थे। नाम के साथ रूप भी अपराजेय शक्ति के साथ विद्यमान है। द्विवेदीजी के शब्दों में- 'चारों ओर कुपित यमराज के दारूण निःश्वास के समान धधकती लू में यह हरा भी है और भरा भी है, दुर्जन के चित्त से भी अधिक कठोर पाषाण की कारा में रूद्ध अज्ञात जलस्रोत से बरबस रस खींचकर सरस बना हुआ है। और मूर्ख के मस्तिष्क से भी अधिक सूखे गिरि कांतर में ऐसा मस्त बना है कि ईर्ष्या होती है। कितनी कठिन जीवनी शक्ति है। प्राण को प्रोण पुलकित करता है, जीवनी शक्ति ही, जीवनी शक्ति को प्रेरणा देती है। यह उद्धरण अपराजेय जीवनी शक्ति की पूरी-पूरी व्याख्या समर्थ भाषा में करता है। यह जीवनी-शक्ति है जो गर्म हवाओं में भी रूप को मलिन नहीं होने देती। यह जीवनी शक्ति ही है जो पत्थर को फोड़कर बहुत गहराई से रस निकाल लाती है और तमाम विपदाओं और कठिनाइयों के बीच में जीवंत बनाए रखती है। यह सत्य कुटज के माध्यम से मनुष्य की अपराजेय जीवनी शक्ति की व्याख्या भी है। इसके कारण ही आनंद भी है और जीवन की प्रेरणा भी है। यही कुटज की अभिव्यक्ति है। इस कुटज के रूपांतरण को पहचान कर ही हम निबंध लेखक को पहचान पाते हैं। ऐसा प्रतीत होता है, मानो हजारी प्रसाद द्विवेदी अब सीधे-सीधे मनुष्य को सम्बोधित कर रहे हैं - 'जीना चाहते हो? कठोर पाषण को भेदकर, पाताल की छाती चीरकर अपना भोग्य संग्रह करो, वायुमंडल को चूसकर झंझा तूफान को रगड़कर, अपना प्राप्य वसूल लो, आकाश को चूमकर अवकाश की लहरी में झूमकर उल्लास खींच लो। कुटज का यही उपदेश है।"

द्विवेदीजी की भाषा की निजी विशेषता है। कुटज तो माध्यम है। वास्तविक तो द्विवेदीजी का सत्य है जो उपर्युक्त शब्दों में झरने की भाँति फूट रहा है। इसीलिए वे जीवन को कला और तपस्या दोनों मानते हैं। जीवन की कला क्या है और तपस्या क्या है? इसे वे और भी स्पष्ट करते हैं।

जीवन जीना केवल जीवित रहना ही नहीं है। सारा संसार केवल स्वार्थ के लिए जीवित है। हजारी प्रसाद द्विवेदी चिंतन अर्थात् बुद्धि पक्ष और भाव अर्थात् हृदय पक्ष को साथ-साथ लेकर चलते हैं। द्विवेदीजी जहाँ आवश्यक है विचार पक्ष को शुद्ध रूप में रखते हैं अन्यथा वे ललित भाव से विषय को प्रस्तुत करते हैं। पुत्र हो या प्रिया सभी अपने मतलब से प्यार करते हैं। अपने समर्थन में द्विवेदीजी पश्चिम के हाब्स और हेल्वेशियस का उल्लेख करते हैं। वे संस्कृत का एक वाक्य भी प्रस्तुत करते हैं - 'आत्मनस्तु कामाय सर्वप्रियं भवतु' द्विवेदीजी स्वार्थ की शास्त्रगत चर्चा करते हुए भावुक हो उठते

टिप्पणी

हैं और ओजपूर्ण भाषा में लिखने लगते हैं : 'दुनिया में त्याग नहीं है, प्रेम नहीं है, परमार्थ नहीं है - है केवल प्रचण्ड स्वार्थ।' इस स्वार्थ के साथ ही वे जिजीविषा अर्थात् 'जीने की इच्छा' की भी विशद चर्चा करते हैं। भीतर की जिजीविषा-जीते रहने की प्रचण्ड इच्छा-ही अगर बड़ी बात है तो फिर यह सारी बड़ी बड़ी बोलियाँ, जिनके बल पर दल बनाए जाते हैं, शत्रुमर्दन का अभिनय किया जाता है, देशोद्धार का नारा लगाया जाता है, साहित्य और कला की महिमा गायी जाती है, झूठ हैं। इसके द्वारा कोई-न-कोई अपना बड़ा स्वार्थ सिद्ध करता है। इस सबका निष्कर्ष निकालते हुए वे मानते हैं कि यह सोचना गलत है। स्वार्थ और जिजीविषा से भी प्रचण्ड कोई-न-कोई शक्ति अवश्य है। वह शक्ति क्या है? इसका उत्तर देते हुए वे 'समष्टि बुद्धि' को मान्यता देते हैं। अर्थात् समष्टि का स्वार्थ ही सबसे बड़ी शक्ति है। द्विवेदीजी ने अपन उपन्यासों में भी इसी की स्थापना की है। उनकी स्पष्ट किंतु अत्यंत महत्वपूर्ण मान्यता है कि 'अपने आपको दलित द्राक्षा की भाँति निचोड़कर जब तक 'सर्व' के लिए निछावर नहीं कर दिया जाता तब तक स्वार्थ खण्ड सत्य है, वह मोह को बढ़ावा देता है, तृष्णा को उत्पन्न करता है और मनुष्य को दयनीय कृपण बना देता है।' इसका अर्थ यह हुआ कि समष्टि और सर्व के प्रति अपने आपको पूरा दे देना ही पूर्ण सत्य है।

अपने इसी पूर्ण सत्य के लिए द्विवेदीजी कुटज को सामने रखते हैं। भावात्मकता और प्रवाहमयता के साथ वे कुटज की बात करते हैं - 'कुटज क्या केवल जी रहा है। वह दूसरे के द्वार पर भीख माँगने नही जाता, कोई निकट आ गया तो भय के मारे अधमरा नहीं हो जाता, नीति और धर्म का उपदेश नहीं देता फिरता, अपनी उन्नति के लिए अफसरों का जूता नहीं चाटता फिरता, दूसरों को अवमानित करने क लिए ग्रहों की खुशामद नहीं करता। आत्मोन्नति हेतु नीलम नहीं धारण करता, अंगूठियों की लड़ी नहीं पहनता, दाँत नहीं निपोरता, बगले नहीं झाँकता। जीता है और शान से जीता है- काहे वास्ते, किस उद्देश्य से? कोई नहीं जानता मगर कुछ बड़ी बात है। स्वार्थ के दायरे से बाहर की बात है। भीष्म पितामह की भाँति अवधूत की भाषा में कह रहा है, 'चाहे सुख हो या दुख, प्रिय हो या अप्रिय, जो मिल जाए उसे शान के साथ, हृदय से बिल्कुल अपराजित होकर, सोल्लास ग्रहण करो। हार मत मानो।' निबंध में, 'दलित द्राक्षा की भाँति निचोड़कर दे देना' को ही कुटज का मूर्त रूप व्याख्यायित किय गया है। केवल जीना या स्वार्थ के लिए जीना सत्य नहीं है। स्वार्थ के कारण ही झुकना पड़ता है, भय का शिकार होना पड़ता है, खुशामद करनी पड़ती है, ढोंग करना पड़ता है, और भी नाना प्रकार के निंदनीय कर्म करने पड़ते हैं। कुटज इन सबसे विलग होकर जीता है। द्विवेदीजी प्रश्न करते हैं किस लिए? काहे के वास्ते? वे ही उत्तर देते हैं कि- कुटज हृदय से अपराजेय होकर जीता है। वह अपने लिए नहीं जीता, सबके लिए जीता है। वह सुख में दुख में, प्रिय-अप्रिय में, सब स्थितियों में जो भी मिल जाए- सुख मिले या दुखश प्रिय मिले या अप्रिय सबको आनंद के साथ ग्रहण करता है। यही अवधूत भाषा है। कुटज निर्भय है। कुटज की तीन विशेषताओं का उल्लेख हजारी प्रसाद द्विवेदी करते हैं : (1) अकुतोभया वृत्ति, (2) अपराजित स्वभाव, (3) अविचल जीवन दृष्टि।।

द्विवेदीजी कुटज को मिथ्याचारों से मुक्त मानते हैं। कुटज निबंध के अंत में द्विवेदीजी की मान्यताएँ प्रखर रूप से अभिव्यक्त हुई है। ये मान्यताएँ भारतीय चिंतन के मुक्तकण हैं। प्रथम बात तो यह है कि व्यक्ति न किसी का उपकार कर सकता है न अपकार। दूसरी बात यह है कि मनुष्य केवल जी रहा है, यह जीना इतिहास विधाता की इच्छा और योजना के अनुसार है। तीसरी बात यह है कि मनुष्य के द्वारा किसी को न सुख पहुँचाया जा सकता है न दुख। सुख पहुंच जाए, यह अच्छी बात है, इस पर अभिमान नहीं करना चाहिए। सखी वह है जिसका मनवश में है और दुखी वह है जिसका मन पर वश नहीं है। सुख और दुख मन के विकल्प हैं।" जिसका मन वश में नहीं है वह छल-छंद रचता है।

निबन्धः कुटज
(हजारी प्रसाद द्विवेदी)

टिप्पणी

धोखा देता है। कुटज इन सबसे मुक्त है। हजारी प्रसाद द्विवेदी इसको ही हमारे सामने कुटज के माध्यम से प्रस्तुत करते हैं। इसी कारण वे कुटज को प्रतीक के रूप में उपस्थित करते हैं और लिखते हैं कि कुटज श्वैरागीश है। राजा जनक की तरह संसार में रहकर, सम्पूर्ण भोगों को भोगकर भी उनसे मुक्त है। कुटज अपने मन पर सवारी करता है, मन को अपने पर सवार नहीं होने देता।श

निष्कर्ष रूप में हम यह कह सकते हैं कि इस निबंध के केंद्र में कुटज है। यह अपने आप में भारतीय चिंतन का सिद्ध रूप है। यह सिद्ध रूप अपने मन को वश में कर लेने पर ही प्राप्त होता है स्वार्थ के लिए जीना व्यर्थ है, मूल तो समष्टि दृष्टि में और समष्टि के लिए अपना सब कुछ दे देने में है। यही विषय-वस्तु का सार है।

2.5 ललित निबंध के रूप में 'कुटज'

ललित निबंध क्या है? ललित निबंध का स्वरूप क्या है? ललित निबंध के तत्व क्या हैं। ललित निबंध के रूप में 'कुटज' का परीक्षण करने के पूर्व इन प्रश्नों का उत्तर जानना आवश्यक है।

ललित निबंध मूलत: भाव प्रधान निबंध होते हैं। इसका यह तात्पर्य नहीं है कि इस प्रकार के निबंधों में विचार तत्व का अभाव होता है। कतिपय निबंधों में भावुकता का आधिक्य होने पर भी विचारों की अंतर्धारा बराबर प्रवाहित होती रहती है। कुछ निबंध पूरी तरह से भाव-प्रधान होते हैं। द्वि वेदीजी के ललित निबंधों में विचार और भाव का समावेश बराबर-बराबर है। द्विवेदीजी का पाण्डित्य बराबर उनके साथ रहता है। निबंध लेखन में, स्वच्छंदता, सरलता, आडम्बर हीनता, ता और आत्मीयता के साथ लेखक के वैयक्तिक दष्टिकोण का समावेश रहता है। निबंध एक ऐसी कलाकृति है जिसके नियमों का निर्माता स्वयं लेखक ही होता है। इतना अवश्य है कि सहज, आडम्बर-हीन आत्माभिव्यक्ति के लिए परिपक्व और विचारशील गंभीर व्यक्तित्व का होना आवश्यक है तभी निबंध लेखक की निकटता और आत्मीयता वास्तविक होती है। वस्तुत: ललित निबंध चिंतन प्रधान होते हैं किंतु निबंध लेखक अपनी प्रवृत्ति, स्वभाव या परिस्थिति के अनुसार भावना को प्रधानता देते हैं। इस प्रकार भावना और विचार का एक सहज समन्वय ललित निबंध का वैशिष्टय है। यह समन्वय पाठक के हृदय को द्रवीभूत भी करता है और उसकी बुद्धि को प्रेरित भी करता है। कुटज में हजारी प्रसाद द्विवेदी शास्त्र और भाव दोनों का आश्रय लेकर ललित शैली में तथ्य और सत्य को आत्मीयता के साथ प्रस्तुत करते हैं। कुटज एक फूलों वाला वृक्ष है पर उसका मानवीकरण करते हुए, द्विवेदीजी उसे मित्र, सखा और उससे भी अधिक एक आदर्श के रूप में प्रस्तुत करते हैं।

ललित निबंध वह साहित्यिक विधा है जिसमें भावना और विचारों का समन्वय होता है। स्वच्छंदता, सरसता, आडम्बर हीनता, घनिष्ठता और आत्मीयता के साथ लेखक अपनी निजता के साथ वैयक्तिक बोध और आत्मीयता को इसमें समाहित करता है। ललित निबंधों में कई साहित्य रूपों के गुण भी समाविष्ट रहते हैं। इसमें, जीवन की वास्तविकता, कहानी की संवेदना,

नाटक की नाटकीयता, उपन्यास की चारू कल्पना, गद्य काव्य की भावातिशयता, महाकाव्यों, की गरिमा, विचारों की, उत्कृष्टता - सभी कुछ एक साथ प्राप्त होते हैं।

कुटज एक ललित निबंध है। इसका विषय भी कुटज है। इस विषय को प्रस्तुत करते हुए हजारी प्रसाद द्विवेदी उस भूमि पर भी प्रकाश डालते हैं जहाँ यह उगता है। यह स्थान है हिमालय की वे पर्वत श्रृंखलाएँ जिन्हें शिवालिक कहा जाता है। इस शिवालिक के विवरण में ज्ञान का प्रकाश है। स्थूल वर्णन यथार्थ होकर भी भावमूलक है। इसके साथ ही विषय का आत्मीय-विश्लेषण भी है। प्रवाहमयी भाषा है। इसके पश्चात 'नाम' और 'रूप' की सैद्धांतिक व्याख्या है और फिर कुटज शब्द की भाषाशास्त्र

निबन्ध: कुटज
(हजारी प्रसाद द्विवेदी)

टिप्पणी

के अनुसार व्याख्या है। यह व्याख्या शुष्क सैद्धांतिक न होकर भाव को भी समन्वित करती हुई चलती है। हृदय और बुद्धि का यह समन्वय इस निबंध की महत्वपूर्व उपलब्धि है। पं. रामचंद्र शुक्ल के निबंधों में प्रधानता तो बुद्धि की है - कहीं-कहीं हृदय भी उसमें जुड़ जाता है। हजारी प्रसाद द्विवेदी के निबंधों में हृदय और बुद्धि साथ-साथ चलते हैं। हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कुटज को मानवी-चेतना का रूप प्रदान किया है। यह पुरुष विशेष है। कुटज के साथ द्विवेदीजी सहज आत्मीय संबंध भी बना लेते हैं। इसके बीच में कालिदास का मेघदूत और उनकी कुटज कुसुमों से मेघ की अभ्यर्थना आदि समाहित है। इस सारे विवरण के साथ ही उनकी आत्मीयता कुटज की अभ्यर्थना में परिवर्तित हो जाती है। कुटज ने उनके संतप्त चित्त को सहारा दिया था। 'बड़ भागी फूल है यह। धन्य हो कुटज, तुम गाढ़े के साथी हो। उत्तर की ओर सिर उठाकर देखता हूँ, सुदूर तक ऊँची काली पर्वत श्रृंखला छायी हुई है और एकाध सफेद बादल के बच्चे उनसे लिपटे खेल रहे हैं। मैं भी इन पुष्पों का आदर्श उन्हें चढ़ा दू" आगे चलकर द्विवेदीजी कहते हैं। - 'जो कालिदास के काम आया हो उसे ज्यादा इज्जत मिलनी चाहिए। मिली कम है। पर इज्जत तो नसीब की बात है।" इसके समानांतर वे रहीम को रखते हैं। रहीम को भी जो स्थान मिलना चाहिए था नहीं मिला। कुटज के फूल को भी वह सम्मान नहीं मिला जिसके योग्य वह है। इस स्थान पर सहज भाव से हजारी प्रसाद द्विवेदी एक शुद्ध सत्य को सहजता के साथ रख देते हैं। लेकिन दुनिया है कि मतलब से मतलब है, रस चूस लेती है, छिलका और गुठली फेंक देती है।'

द्विवेदीजी भाषाशास्त्र हैं फलत: कुटज शब्द का ऐतिहासिक संबंध, उसकी प्राचीनता, उसकी व्युत्पत्ति, उसका भाषा परिवार, उसके विविध आयामों पर शास्त्रोक्त मीमांसा करने के पश्चात वे पुन: प्रकृति लालित्य के मध्य कुटज की प्रतिष्ठा करते हुए प्रतीत होते हैं। हजारी प्रसाद द्विवेदी संपूर्ण आत्मीयता के साथ कुटज को आदर्श चिंतन के प्रवक्ता के रूप में प्रस्तुत करते हैं। भाषा, भाव और बोध के लालित्य के रूप में हजारी प्रसाद द्विवेदी के निबंध कुटज की निम्नलिखित पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं : यथा - 'मगर कुटज है कि संस्कृत की निरंतर स्फीयमान शब्द राशि में जो जमके बैठा सो बैठा ही है। चारों ओर कुपित यमराज के दारूण विश्वास के समान धधकती लू में यह हरा भी है और भरा भी है, दुर्जन के चित्त से भी अधिक कठोर पाषण की कारा में रूद्ध अज्ञात जलस्रोत से बरबस रस खींचकर सरस बना हुआ है। और मूर्ख के मस्तिष्क से भी अधिक सूने गिरि कांतर में भी ऐसा मस्त बना है कि ईर्ष्या होती है। कितनी कठिन जीवनी शक्ति है।" इसके पश्चात हजारी प्रसाद द्विवेदी कुटज को जीवनी शक्ति के महत्तम प्रतीक के रूप में विनियोजित कर उसके माध्यम से अपनी सामाजिक-चेतना संबंधी विचार-सरणि को अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं। यह ललित-निबंध द्विवेदीजी की सामाजिक मान्यताओं का विचार-कोष है। यह निबंध हृदयानुभूति का विचार कोष भी है।" ललित निबंध का एक वैशिष्टय स्वच्छंदता है। स्वच्छंदता ही वह विशेषता है जो निबंध को शास्त्र के बोझ से मुक्त करती है। स्वच्छंदता का अर्थ निबंध के संदर्भ में अनियंत्रित होना नहीं है वरन वह लेखक की 'निजता' के मुक्त सन्निवेश से संबंधित है। मुक्तभाव से हजारी प्रसाद द्विवेदी अपने विचारों को इस निबंध में स्थान देते हैं।

ललित निबंध में आत्मीयता और आडम्बरहीनता का विशेष स्थान है। कुटज निबंध में कुटज के साथ लेखक की आत्मीयता पाठक की आत्मीयता बन जाती है। इसमें शास्त्रीयता के साथ आत्मीयता का समन्वय होता है। बुद्धि और हृदय इस प्रकार के निबंधों में अलग-अलग राह पर नहीं चलते हैं। उनमें एकात्मकता रहती है। इसी कारण ललित निबंधों की व्यंजना रागाश्रित व्यंजना होती है। कुटज इस रागाश्रित व्यंजना का अभिनव रूप है। यह रागाश्रित व्यंजना पाठक को आकर्षित करती है और आत्मीयता से बाँध लेती है। पाठक, लेखक और निबंध तीनों ही एकतान होकर रचना को अपने में समाहित करते हैं और स्वयं रचना में समाहित होते हैं। लेखक के भाव और विचार पाठक को प्रभावित

टिप्पणी

करते हैं। यह आत्मीयता रस की संवाहिका भी है और स्वरूप दर्शिका भी है। आडम्बर साहित्य का गुण नहीं दुर्गुण है। ललित निबंध इस आडम्बर के आवरण को अस्वीकार कर सहजता में ही सम्पूर्ण होता है। यदि एक प्रकार से देखा जाय तो कुटज का उत्पत्ति-स्थल, रेतीले पहाड़ों के कठिनतम पर्यावरण के मध्य उसका जन्म लेना और उसी परिवेश में पुष्पित पल्लवित होना सब कुछ एक कहानी जैसा लगता है। एक ऐसी कथा जिसका नायक असीम जीवनी शक्ति से जीवंत भी है। इसका नायकत्व जीवन की कला भी जानता है। उसमें रस भी है और आदर्श भी। हजारी प्रसाद द्विवेदी उसे नाना प्रकार के विशेषणों से संबोधित करते हैं।

हजारी प्रसाद द्विवेदी आत्मीय एवं घनिष्ठ भाव से कुटज से जुड़ जाते हैं। इस निबंध से गुजरते हुए ऐसा लगता है जैसे द्विवेदीजी ने उसकी काया में ही प्रवेश कर लिया है। इसको ही 'परकाय प्रवेश' कहते हैं। यदि ऐसा न होता तो निबंध बाह्य विवरण देकर ही समाप्त हो जाता। ललित निबंध का वैशिष्टय अंतरंग होने में है। कुटज के साथ यह अंतरंगता कुटज निबंध का प्राण है। वह सखा है, मनस्वी मित्र है, गाढ़े का साथी है। हजारी प्रसाद द्विवेदी कुटज के साथ एकात्म हो जाते हैं। विवरण तो कोई भी सामान्य लेखक दे सकता है, पर विषय-वस्तु के साथ एकात्म स्थापित करना महान लेखक के द्वारा ही हो सकता है। इस एकात्म भाव के कारण कभी-कभी ऐसा भी प्रतीत होता है कि कुटज के भीतर से हजारी प्रसाद द्विवेदी की वाणी का झरना प्रवाहित हो रहा है। विषय से अभिन्नता ललित निबंध के लिए आवश्यक है। यह एकत्व और आत्मीयता होने पर वस्तु की अंतरंगता स्पष्ट होती है। हृदय का हृदय से विनियोग होता है। यह विनियोग चिंतन के प्रवाह को प्रस्तुत करता है, भाषा को गतिमान बनाता है, आत्मीयता से भर देता है, शिल्प को वैभव प्रदान करता है और भाषा को सरस और सारगर्भित बनाता है। हजारी प्रसाद द्विवेदी कुटज के जीवन को शानदार ढंग से चित्रित करते हैं। द्विवेदीजी कुटज की रचना करते हैं और उनकी अपनी दृष्टि कुटज में रम जाती है। इस रम्यं दृष्टि का आलेखन एक चमत्कार पैदा करता है। पूरे निबंध में कुटज से जुड़कर हजारी प्रसाद द्विवेदी की वैयक्तिक दृष्टि कभी भाव, कभी उपदेश और कभी जीवनादर्श के रूप में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। कुटज 'द्वन्द्वातीत' है। 'अलमस्त' है। कुटज मुझे 'अनादिकाल से जानता है।' मैं भी कुटज को पहचानता हूँ, 'अवश्य पहचानता हूँ।' आदि कथन हजारी प्रसाद द्विवेदी के एकात्मता और भाव को स्पष्ट करते है। यह कुटज 'चिर परिचित दोस्त' है। हजारी प्रसाद द्विवेदी इस चिरपरिचित दोस्त से जी भर कर बात करते हैं। जीवन जीना चाहते हो तो 'कठोर पाषण' को भेदकर, पाताल की छाती चीरकर अपना भोग्य संग्रह करो, वायुमंडल को चूसकर, झंझा-तुफान को रगड़कर, अपना प्राप्य वसूल लो, आकाश को चूमकर अवकाश की लहरी में झूमकर उल्लास खींच लो। कटज का यही उपदेश है। पाषाण, पाताल, वायु और आकाश से क्या और कैसे लेना, यह कुटज का उपदेश नहीं हैं। यह तो हजारी प्रसाद द्विवेदी की अपनी दृष्टि है अपनी चेतना है, अपना दर्शन अथवा भारतीय चिंतन की थाती है जो कुटज के माध्यम से अभिव्यक्ति पा रही है। इसी प्रकार 'मैं' का 'सबके लिए' सबकुछ दे देना और यह भी 'दलित द्राक्षा की भाँति निचोड़कर सर्व के लिए निछावर कर देना' भी द्विवेदीजी के चिंतन, दर्शन और दृष्टि का ही रूप है। अंत में भी सखी कौन है का यह उत्तर कि जिसका मन वश में है वही सुखी है, यह कहना भी हजारी प्रसाद द्विवेदी के सोच का ही प्रमाण है जो इस निबंध में ही नहीं, उनके द्वारा रचित अन्यान्य साहित्य विधाओं में भी अभिव्यक्त हुआ है। ललित निबंध में यह वैयक्तिक दष्टि सबके लिए प्रयक्त होती है। ललित निबंध में सहजता. सरसता और प्रक का होना भी आवश्यक है कुटज निबंध में ये सभी गुण विद्यमान है।

इस निबंध का उद्देश्य क्या है? यह निबंध अपने लघु आकार में एक महाकाव्य की गरिमा समेटे हुए है। ललित इसका शिल्प है, इसकी शैली है, और जीवन को जीवनीशक्ति प्रदान करना तथा निस्वार्थ

टिप्पणी

होकर व्यक्ति का समाज के लिए नि:शेष हो जाना इसका उद्देश्य है। यह व्यष्टि का समष्टि के लिए आदर्श कर्म है। यही शान से जीना है।

ललित निबंध के रूप में कुटज अत्यंत उत्कृष्ट निबंध है। भाव और चिंतन का सामंजस्य तथा भाषा का लालित्य और प्रवाह इस निबंध को विशिष्टता प्रदान करते हैं। यह निबंध सहजता और सरसता में महत्तम चिंतन का प्रकाशक है। विषयवस्तु सूक्ष्म और गहन है परंतु कुटज का माध्यम जिस सहजता और प्रसन्न भाषा के साथ उसे प्रत्यक्ष करता है वह ललित निबंध का मानदंड है। शास्त्र-ज्ञान इसमें है, दर्शन इसमें है और चिंतन भी इसमें है किंतु उसकी प्रस्तुति ललित है, प्रिय है और सुंदर है। इसमें प्रकृति भी है और पुरुष भी है। दोनों का लीला भाव भी है। हिदीं ललित निबंधों के क्षेत्र में कुटज अद्वितीय है।

2.6 'कुटज' की भाषा-शैली

कुटज की भाषा विचारों और भावों के अनुरूप प्रवाहमयी सहज भाषा है। वाक्य रचना विषय के अनुरूप है, जिसमें कहीं छोटे-छोटे और कहीं बड़े-बड़े वाक्यों की रचना की गई है। जहाँ जिज्ञासा मूलकता है वहाँ कई प्रश्नवाचक वाक्यों की रचना की गई है। उदाहरण के लिए देखिए- रूप मुख्य है या नाम? नाम बड़ा है या रूप? पद पहले या पदार्थ? हजारी प्रसाद द्वि वेदी की भाषा कहीं-कहीं व्याख्यानपरक अथवा व्याख्यात्मक भी हो जाती है। इस प्रकार की भाषा में विवरण-प्रधानता आ जाती है। यह विवरण विषय के अनुसार कहीं चित्रात्मक भाषा का रूप लेकर उपस्थित होता है, तो कहीं शास्त्रों की बारीक जानकारियों का संग्रह बनकर सपाट रूप में उपस्थित होता है। यथा - (1) इन्हीं में से एक छोटा-सा बहुत ही ठिगना पेड़ है, पत्ते चौड़े भी हैं, बड़े भी हैं। फूलों से तो ऐसा लदा है कि कुछ पूछिए नहीं। अजीब सी अदा है, मुस्कराता जान पड़ता है। (2) कुटज अर्थात जो कुट से पैदा हुआ हो। 'कुट' घड़े को भी कहते हैं, घर को भी कहते हैं। कुट अर्थात् घड़े से उत्पन्न होने के कारण अगस्त्य मुनि भी कुटज कहे जाते हैं। । इनमें उदाहरणों में भाषागत भिन्नता है। प्रथम में विवरण तो है पर साथ ही चित्रात्मकता है और चित्रात्मकता के साथ लेखक की आत्मीयता भी प्रकट हुई है। मानवीकरण तो है ही। दूसरे में शास्त्र-चर्चा है अतएव भाषा सपाट है किंतु बुद्धिमूलक है। बुद्धि के द्वारा विषय के अर्थ को सुस्पष्ट करते समय वे सस्कृत, हिंदी और देशी-विदेशी विद्वानों के, गद्य और पद्य के मिले जुले उद्धरण भी प्रस्तुत करते हैं जिसके द्वारा विषय की प्रमाणिकता की पुष्टि तो होती ही है पर साथ ही भाषा भी समर्थ और बहुआयामी बन जाती है।

ठीक इसके विपरीत जब द्विवेदीजी विषय को आत्मीय दृष्टि प्रदान करते हैं तब भाषा में प्रवाह, लालित्य तथा काव्यात्मकता का सन्निवेश हो जाता है। एक उद्धरण कुटज से प्रस्तुत है - 'बहरहाल यह कूटज - कुटज है, मनोहर कुसुम-स्तबकों से झबराया, उल्लास लोल चारुस्मित कुटज द्य कालिदास ने 'आषाढस्य प्रथम दिवसे' रामगिरि पर यक्ष को जब मेघ की अभ्यर्थना के लिए नियोजित किया तो कम्बल को ताजे कटज पष्पों की अंजलि देकर ही संतोष करना पड़ा - चम्पक नहीं, बकुल नहीं, नीलोत्पल नहीं, अरविन्द नहीं- फकत कुटज के फूल।' इस उद्धरण को सामने रखकर हम ललित निबंध की भाषा के प्रतिमान स्थिर कर सकते हैं। इस भाषा में कालिदास के मेघदूत के उल्लेख से भाषा के माध्यम से कितने ही बिम्ब बन जाते हैं। ये बिम्ब चाक्षुष या दृश्य बिम्ब भी हैं और मानस बिम्ब भी। बिम्बों की यह श्रृंखला केवल दृश्यात्मक ही नहीं है अपितु एक पुलक भी देती है। यह सर्जनात्मक भाषा का ऐसा रूप है, जिसमें लेखक की बुद्धि भी रमी हुई है, जो अंतत: भावात्मकता और आत्मीयता में घुलमिल जाती है। इस निबंध की भाषा का एक उदाहरण और देखिए : 'कुटज क्या केवल जी रहा है। वह दूसरे के द्वार पर भीख माँगने नहीं जाता, कोई निकट आ गया तो भय के मारे अधमरा नहीं हो जाता, नीति और धर्म का उपदेश नहीं देता फिरता, अपनी उन्नति के लिए अफसरों का जूता नहीं चाटता फिरता,

निबन्ध: कुटज
(हजारी प्रसाद द्विवेदी)

टिप्पणी

दूसरों को अवमानित करने क लिए ग्रहों की खुशामद नहीं करता। आत्मोन्नति हेतु नीलम नहीं धारण करता, अंगूठियों की लड़ी नहीं पहनता, दाँत नहीं निपोरता, बगलें नहीं झाँकता। जीता है और शान से जीता है - काहे वास्ते, किस उद्देश्य से?"

इस उद्धरण में मुहावरों की झड़ी लगी हुई है। भाषा के पीछे से व्यंग भी जगह-जगह झाँकता हुआ प्रतीत होता है। एक वातावरण की सृष्टि भी भाषा ने की है जिसमें रस बहुमूल तथ्य का निर्देश भी है कि आज का युग स्वार्थ युग है जिसमें खुशामद, चाटुकारिता, अन्ध विश्वास, दीनता आदि ही सब कुछ हो गए हैं। पर शान से वही जी सकता है जो इन सबको , धता बताकर निर्भय भाव से जीवित रहे। इस भाषा में लक्षणा और व्यंजना ने भाषा को गरिमा और शक्ति प्रदान की है। कितने ही बिम्ब अनायास ही पाठक के सामने तैरने लगते हैं। कोई भी निबंध विचार शून्य नहीं होता। द्विवेदीजी के निबं की भाषा समर्थ भाषा है। उसमें अभिधा, लक्षणा और व्यंजना का पूरा पूरा प्रयोग है। इस भाषा में विचार और संवेदना दोनों को वहन करने की शक्ति है। इस भाषा में प्रवाह है, बिम्बात्मकता है, सहजता है और सरलता है, जटिलता नहीं। इसमें आख्यान भी है और व्याख्यान भी। यह भाषा विवेक को जाग्रत करने वाली भाषा है। भाषा का सौन्दर्य और लालित्य यहाँ गतिमान रूप में अपनी निरंतरता बनाए हए है। ललित निबंध के लिए यह मानक भाषा है। द्विवेदीजी की निबंध भाषा जड़ भाषा नहीं है, अतिशय भावुकता से सनी चिपचिपाती-भिनभिनाती भाषा भी नहीं है, यह तो एक चिंतक के हृदय की भाषा है। इस भाषा के द्वार सभी भाषाओं के लिए खुले हुए है। यहाँ संस्कृत है, उर्द है, लोकभाषा है, हिंदी है, श्लोक है, और दोहे भी है। 'द्वंद्वातीत' के साथ 'अलमस्त' शब्द रखा हुआ है। बेहया, मस्तमौला, गलत बयानी, बेरूखी, बेकद्रदानी कितने ही उर्दू के शब्द यहाँ प्रयुक्त हुए हैं। बिरछ, काहे, जैसे लोकभाषा के शब्द के प्रयोग तो द्विवेदी की भाषा में है ही अंग्रेजी का तो पूरा का पूरा वाक्य ही नागरी लिपि में रख दिया गया है। 'व्हाट्स देयर इन ए नेम'। संस्कृत के शब्दों की तो लड़ी की लड़ी इस निबंध में प्रयुक्त हुई है। यथा - सुस्मिता, गिरिकांता, शुभ्रकिरीटिनी, मदोद्धता, विजितातपा, अलकावतंसा आदि-आदि। द्विवेदीजी की भाषा समृद्ध भाषा है। विषय के अनुरूप भाषा है। उसमें बिंबधर्मिता है, अर्थ गौरव है, व्यंजकता है और व्यापकता है। ललित निबंध की बहुआयामी सर्जनात्मक भाषा का एक आदर्श रूप उन्होंने हिदी जगत में प्रतिष्ठित किया है।

हजारी प्रसाद द्विवेदी ने निबंधों की पाँच श्रेणियों का उल्लेख किया है। वार्तालाप मूलक, व्याख्यान मूलक, अनियंत्रित गप्प मूलक, स्वगत चिंतन मूलक और कलह मूलक। द्विवेदी जी इन श्रेणियों को सूक्ष्म या साहित्यिक नहीं मानते हैं। मेरे विचार से ये ही निबंध की वे शैलियाँ है जो द्विवेदीजी के निबंधों का रचाव करती है। कुटज से तो द्विवेदी जी आत्मीय भाव के साथ भिन्नता का संबंध स्थापित कर लेते हैं और उससे बातचीत करते हुए प्रतीत होते हैं। देखिए - 'पहचानता हूँ उजाड़ के साथी, तुम्हें । अच्छी तरह पहचानता हूँ।' अथवा इस निबंध के अंत में वे कहते हैं - 'मनस्वी मित्र, तम धन्य हो।' इस वार्तालाप शैली की वजह से वे कटज का मानवीकरण करते हैं। वार्तालाप की सहजता और अपनापन कुटज निबंध की एक शैली है। द्विवेदीजी के इस निबंध में कई शैलियों का प्रयोग किया गया है।

इस निबंध की व्याख्यान शैली में सरल भाषा, व्याख्यात्मकता तथा प्रवाह का विशेष स्थान है। एक उदाहरण देखिए : 'जो समझता है कि वह दूसरों का उपकार कर रहा है वह अबोध है, जो समझता है कि दूसरे उसका अपकार कर रहे हैं, वह बुद्धिहीन है। कौन किसका । अपकार कर रहा है? मनुष्य जी रहा है, केवल जी रहा है, अपनी इच्छा से नहीं, इतिहास विधाता की योजना के अनुसार। किसी को उससे सुख मिल जाए बहत अच्छी बात है. नहीं मिल सका, कोई बात नहीं, परंतु उसे अभिमान नहीं होना चाहिए। सुख पहुँचाने का अभिमान यदि गलत है, तो दुख पहुँचाने का अभिमान तो नितांत गलत

निबन्ध: कुटज
(हजारी प्रसाद द्विवेदी)

टिप्पणी

है।' इस उद्धरण में व्याख्यान शैली के सभी गुण विद्यमान हैं। इस उद्धरण में सहजता के साथ आकर्षित करने वाली भाषा है जिसमें निजता भी है। इसमें चिंतन भी है जो विचार करने की प्रेरणा देता है।

कुटज निबंध में गप्प मूलकता भी है। यह कथा कहने की शैली है। गप्प का अर्थ 'झूठ' नहीं है। गप्प में एक कथा जैसी होती है अथवा एक बात भी होती है। गप्प मारना, कृत्रिम शैली में वार्तालाप करना है। सहजता और स्वाभाविकता के साथ सत्यता की झंकृति इस शैली की विशेषता है। इस निबंध में गप्प शैली का प्रयोग न्यूनाधिक मात्रा में किया गया है। ललित निबंध में यह शैली आत्माभिव्यक्ति के साथ सहजता प्रदान करती है। उदाहरण के लिए प्रस्तुत है कुटज का एक अंश : याज्ञवल्क्य बहुत बड़े ब्रह्मवादी ऋषि थे। उन्होंने अपनी पत्नी को विचित्र भाव से समझाने की कोशिश की कि सब कुछ स्वार्थ के लिए है। पुत्र के लिए पुत्र प्रिय नहीं होता, पत्नी के लिए पत्नी प्रिय नहीं होती - सब अपने मतलब के लिए प्रिय होते हैं- 'आत्मनस्त कामाय सर्व प्रियं भवति।' विचित्र नहीं है यह तर्क? संसार में ज कहीं प्रेम है सब मतलब के लिए है।"

स्वगत चिंतन शैली इस निबंध में विशेष रूप से काम में लाई गई है। यह चिंतन कुटज के रूप, नाम और कृतित्व के प्रकाशन के साथ-साथ सामाजिक चेतना को उदबुद्ध करने के लिए प्रयुक्त की गई है।

वैसे शैली अंग्रेजी के 'स्टाइल' शब्द का अनुवाद है। प्राचीन साहित्यशास्त्र में शैली से मिलता जुलता शब्द 'रीति' है। आचार्य वामन इसे विशिष्ट पदरचना कहते हैं। शैली को गुण मानते हुए उसकी परिभाषा इस प्रकार की जा सकती है। 'शैली अनुभूत विषयवस्तु को सजाने के उन तरीकों का नाम है जो विषयवस्तु की अभिव्यक्ति को सुंदर एवं प्रभावपूर्ण बनाती है। यदि इस परिभाषा को ग्रहण करें तो एक बात स्पष्ट है कि प्रमुखता विषय-वस्तु की है। शैली प्रस्तुतीकरण में सहायक होती है। अब प्रश्न यह है कि क्या किसी भी विषय-वस्तु की निर्धारित शैली हो सकती है। शैली का निर्धारण तो लेखक ही करता है। अत: कई प्रकार की शैलियों का प्रयोग लेखक विषय की अभिव्यक्ति के लिए अपनी रुचि के अनसार करता है। इस प्रकार की शैलियों के कई प्रकार हो सकते हैं, जैसे विवरणात्मक, व्याख्यात्मक, समीक्षात्मक, गवेषण गात्मक और भावात्मक आदि। शैलियों पर व्यास और समास शैली के रूप में भी विचार किया जाता है। समास अर्थात् सूत्रबद्धता ओर व्यास अर्थात व्याख्यात्मकता। कुटज निबंध में विषय के अनुरूप, विवरणात्मक, व्याख्यात्मक, भावात्मक और गवेषणात्मक शैलियाँ व्यवहृत हुई है।

लालित्य या ललित भाव, ललित निबंध के लिए आवश्यक है। इसे हम भावात्मक शैली कह सकते हैं। कोई भी निबंध विचार से शून्य नहीं होता। विचार से शून्य होने पर तो ऐसा निबंध प्रलाप मात्र होकर रह जाएगा। कुटज विचारों की श्रृंखला भी है और भावाभिव्यंजना भी। हजारी प्रसाद द्विवेदी की शैली में इन दोनों का अभूतपूर्व सामंजस्य है।

2.7 सारांश

आपने हजारी प्रसाद द्विवेदी के निबंध कुटज के बारे में लिखी गई इस इकाई का अध्ययन कर लिया है। आपके सामने यह स्पष्ट हो गया होगा कि द्विवेदीजी के निबंधों की क्या विशेषता है और उसमें बटन का क्या महत्व है। कुटज ललित निबंध है। ललित निबंध यानी ऐसा निबंध जिसमें भाव और विचार के सामंजस्य और भाषा-शैली के लालित्य के द्वारा लेखक अपनी बात आत्मीय ढंग से कहता है। कुटज में द्विवेदीजी इसी ढंग से अपनी बात कहते हैं।

कुटज के बहाने से वे मानव-प्रकृति और मानव धर्म के ऐसे पहलुओं पर प्रकाश डालते हैं जिनका मानव-सभ्यता और संस्कृति के विकास में केंद्रीय महत्व है। द्विवेदीजी मानवतावादी लेखक थे। वे जीवन में संघर्ष और प्रेम दोनों का समान महत्व देते थे। उनकी दृष्टि में यदि हमारा स्वार्थ सभी का स्वार्थ न

बने तो मानव जीवन की सार्थकता क्या। अपने इसी दृष्टिकोण को उन्होंने कुटज के माध्यम से व्यक्त किया है। कुटज एक अल्प परिचित प्रकृति का रूप, लेकिन जो किसी यश और अर्थ की कामना के बिना, किसी के आगे नतमस्तक हुए बिना अपने जीवन के लिए रस ग्रहण करता है और इस संघर्षध र्मी जीवन से जो सौंदर्य वह सृष्टि को प्रदान करता है, उसका महत्व क्या शब्दों में बयान किया जा सकता है। द्विवेदीजी ने इसी बात को इस निबंध के माध्यम से कहा है।

कुटज को पढ़ते हुए यह लग सकता है कि हम एक पहाड़ी पौधे के बारे में जानकारी हासिल कर रहे हैं। उसके इतिहास, उसका परिवेश, उसकी प्रकृति सबके बारे में। निश्चय ही ये सब बातें निबंध में है, लेकिन इन बातों को द्विवेदीजी ने इस ढंग से कहा है कि इनका अर्थ सिर्फ कुटज तक ही सीमित नहीं रहता। यह काव्य की समास शैली है जिसका प्रयोग वे निबंध के लिए भी करते हैं।

भाषा की दृष्टि से भी निबंध का प्रभाव अप्रतिम है। द्विवेदीजी के निबंध में न तो वैचारिक बोझिलता होती है, न भावात्मक ऊहापोह। वे ज्ञान को संवेदनात्मक रूप में और संवेदना को ज्ञानात्मक रूप में प्रस्तुत करते हैं। निबंध में उनके पांडित्य का भी प्रमाण मिलता है, लेकिन वह आतंकित नहीं करता बल्कि हमारे ज्ञान भंडार को समृद्ध करता है। आशा है इस इकाई के अध्ययन से आपको कुटज को समझने में मदद मिली होगी।

2.8 अभ्यास प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. **ललित निबंध की दृष्टि से कुटज की विशेषताओं का विवेचन कीजिए।**
2. **कुटज के माध्यम से लेखक क्या कहना चाहता है? सोदाहरण उल्लेख कीजिए।**
3. **कुटज पर लेखकीय व्यक्तित्व के प्रभाव की समीक्षा कीजिए।**
4. **निबंध 'कुटज' का उद्धेश्य समझाऐं।**
5. **निबंध 'कुटज' की प्रस्तावना बताऐं।**

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. **हजारी प्रसाद द्विवेदी के निबंध लेखन पर पिशेष टिप्पणी करें।**
2. **'कुटज' की अतंर्वस्तु पर प्रकाश डाले।**
3. **ललित निबंध के रूप में 'कुटज'। व्याख्या करें।**
4. **'कुटज' के भाषा शैली समझाऐं।**
5. **हजारी प्रसाद द्विवेदी के जीवन पर प्रकाश डालें।**

♦♦♦♦♦

इकाई 3

रेखाचित्र : ठकुरी बाबा (महादेवी वर्मा)

पाठ-संरचना

3.1 उद्देश्य
3.2 प्रस्तावना
3.3 रेखाचित्र के रूप में ठकुरी बाबा
3.4 ठकुरी बाबा में सामाजिक चेतना
3.5 ठकुरी बाबा की भाषा और शिल्प
3.6 ठकुरी बाबा का मूल्यांकन
3.7 सारांश
3.8 अभ्यास प्रश्न

3.1 उद्देश्य

इस इकाई में एक रेखाचित्र के रूप में ठकुरी बाबा की विशिष्टता की पहचान कर सकेंगे। ठकुरी बाबा का महत्त्व क्यों है और वह महादेवी के दूसरे रेखाचित्रों से किस रूप में भिन्न है, इसको भी समझ सकेंगे।

ठकुरी बाबा साधारण अर्थ में रेखाचित्र ही नहीं है। महादेवी ने इसके माध्यम से ग्राम्य समाज के उस हिस्से की सामाजिक दशा का यथार्थ चित्रण किया है जो जीने के लिए जरूरी बुनियादी साधनों से भी वंचित है। लेकिन इसके बावजूद उनमें गहरी मानवीय सहानुभूति, करुणा, जीवन राग और कर्मठता मौजूद है। इस रेखाचित्र में व्यक्त सामाजिक चेतना की उक्त विशेषताओं को भी आप इकाई के माध्यम से समझ सकेंगे।

महादेवी वर्मा के रेखाचित्रों में भाषा और शिल्प का प्रयोग अत्यंत सावधानीपूर्वक किया गया है। रेखाचित्रों की शिल्पगत विशिष्टता और उसके भाषिक सौंदर्य को समझने में यह इकाई आपकी मददगार होगी। ठकुरी बाबा महादेवी का चर्चित रेखाचित्र न होते हुए भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। अत्यंत विराट फलक और गहरी सामाजिक संवेदनशीलता इसकी मुख्य विशेषताएँ हैं। इकाई के अध्ययन से आप सामान्य तौर पर महादेवी के रेखाचित्रों को और खास तौर पर ठकुरी बाबा का सम्यक मूल्यांकन करने में मदद मिलेगी।

3.2 प्रस्तावना

आपने महादेवी वर्मा का रेखाचित्र ठकुरी बाबा को अवश्य पढ़ लिया होगा। अगर नहीं पढ़ा है तो अवश्य पढ़ लें। इसके बाद आप इस इकाई को पढ़ेंगे तो आपको इसे समझने में मदद मिलेगी। हमने पाठ्यक्रम-निर्देशिका में महादेवी वर्मा के लेखकीय व्यक्तित्व और रेखाचित्र की विशेषताओं के बारे में भी बताया है।

इस खंड में आप जिन इकाइयों का अध्ययन करने जा रहे हैं उनका संबध रेखाचित्र, संस्मरण, जीवनी और आत्मकथा से है। इस खंड की इस पहली इकाई में आप महादेवी वर्मा द्वारा लिखित ठकुरी बाबा के बारे में पढ़ेंगे। ठकुरी बाबा काल्पनिक चरित्र नहीं है बल्कि इस रेखाचित्र में आए सभी चरित्र वास्तविक हैं और जिन घटनाओं का उल्लेख किया गया है वे भी : वास्तविक हैं। महादेवी वर्मा अपने जीवन में आए कुछ ऐसे लोगों को अपने रेखाचित्रों का पात्र बनाती हैं जो सामाजिक दृष्टि से अत्यंत गरीब, अशिक्षित और साधारण होते हैं। लेकिन उनके जीवन में बहुत कुछ ऐसा है जो लेखिका को उस समाज में दिखाई नहीं देता जो शिक्षित, सम्पन्न और विशिष्ट लोगों का है। इन साधारण लोगों के जीवन की असाधारणता को उभारने और अपने हृदय की संपूर्ण संवेदना और रचनात्मक ऊर्जा के साथ उन्हें शब्दबद्ध करने का प्रयास ही हमें महादेवी के रेखाचित्रों में दिखाई देता है।

महादेवी वर्मा ने कई सारे रेखाचित्र लिखे हैं। ठकुरी बाबा उनमें से एक है। यह रेखाचित्र कई दृष्टियों से उनके अन्य रेखाचित्रों से अलग भी है और विशिष्ट भी। इकाई में इसके इस पक्ष पर विचार किया गया है। लेखिका ने रेखाचित्र में जो शैली अपनाई है और भाषा का जैसा प्रयोग किया है, आप उससे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकते। लेकिन आपको यह भी विचार करना है कि इस रेखाचित्र की भाषा और उसके शिल्प में वे कौन-सी बातें हैं जिनसे यह रेखाचित्र इतना प्रभावशाली बन सका है।

इस रेखाचित्र का नाम. ठकुरी बाबा है। लेकिन उसमें सिर्फ ठकुरी बाबा ही नहीं है। अन्य कई पात्र हैं जिनका अपना व्यक्तित्व है, अपनी कथा है, अपने दुख हैं। इन सब पात्रों के जीवन से मिलकर जो समाज हमारे सामने आता है, उनकी तकलीफें और उनके दुख हमारे सामने आते हैं तो हमारा हृदय

टिप्पणी

करुणा से विगलित हए बिना नहीं रहता। यह करुणा निष्क्रिय सहानभति पैदा करने वाली करुणा नहीं है बल्कि हमें अपने समाज के अंतर्विरोधों को समझने की चेतना और दृष्टि देने वाली करुणा है। वह हमें निष्क्रिय नहीं बनाती सक्रिय बनाती हैं। ठकुरी बाबा का मूल्याकन उसकी इस भूमिका के संदर्भ में भी करना चाहिए।

ठकुरी बाबा का अध्ययन आप ऐसे समय करने जा रहे हैं जबकि उस समाज की चिंता और उनके प्रति सहानुभूति मध्य वर्ग में कम होती जा रही है। ठकुरी बाबा में महादेवी ने उस शिक्षित समाज की कमजोरियों को भी दर्शाया है जिसके कारण ठकुरी बाबा और उनके संगी साथियों का व्यक्तित्व असाध ारण बनकर उभरता है। ठकुरी. बाबा जैसे लोगों के बारे में आज समाज ने चिंता करना छोड़ दिया है। क्या यह सामाजिक दृष्टि से श्रेयस्कर है? ठकुरी बाबा हमारे समाज की इस ऐतिहासिक विडम्बना को भी उजागर करता है। आप इस इकाई के अध्ययन से ठकुरी बाबा के अध्ययन का सही परिप्रेक्ष्य पा सकेंगे, ऐसी आशा है।

3.3 रेखाचित्र के रूप में 'ठकुरी बाबा'

कहानी, उपन्यास, नाटक और प्रबंध काव्य की तरह स्केच अथवा रेखाचित्र में भी पात्र होते हैं। महादेवी वर्मा द्वारा लिखित संस्मरणात्मक रेखाचित्रों में प्राय: एक ही केंद्रीय पात्र होता है। अपने संपर्क में आए लोगों की स्मृतियों को वे सिलसिलेवार ढंग से एक घटनापूर्ण आख्यान के रूप में व्यवस्थित करती हैं ताकि केंद्रीय पात्र के चरित्र के आंतरिक और बाह्य पहलुओं पर ठीक से रोशनी पड़ सके और पाठक उसके व्यक्तित्व के आर-पार झाँक सके।

ठकुरी बाबा नामक रेखाचित्र को ही देखिए। ध्यान से पढ़ने पर आपको पता चलेगा कि महादेवी ने प्रसंग तो शुरू किया है अपने कल्पवास के अनुभव का, और प्रकारांतर से भक्तिन के चरित्र के भी कुछ पहलू उजागर होते चलते हैं, पर उनका वास्तविक अभिप्रेत है - ठकुरी के चरित्र का रेखांकन। यद्यपि बीच-बीच में कल्पवास से संबंधित धार्मिक रिवाज और प्रथा की पुरातन युगीन मूल प्रेरणा का तात्पर्य भी प्रस्तुत किया गया है, पर ठकुरी से संपर्क की कहानी शुरू होते ही लेखिका का पूरा फोकस उस पात्र के व्यक्तित्व पर केंद्रित हो जाता है। महादेवी के कल्पवास की कुटिया में संक्राति के एक दिन पहले संध्या समय ग्रामीण यात्रियों का एक दल आ घुसा। एक बूढ़े सज्जन कल्पवास के रैनबसेरे में ठहरने की अनुमति माँगने लगे। वे अकेले न थे - पूरी एक टोली थी उनके साथ। ठहरने की अनुमति मिल गई। चूंकि वृद्ध सज्जन का स्वर स्नेहसिक्त था और उसमें आत्मीयता भी थी। लेखिका की पर्णकुटी कोलाहल से परिपूर्ण हो गई। इस बूढ़े बाबा ने पर्णकुटी के बरामदे में अपना पूरा आडम्बर फैला लिया। फटी और अनिश्चित रंग वाली दरी, दूसूती का बिछौना, मैले फटे कपड़ों की गठरी, लाल चिलम का मुकुट पहने नारियल का काला हुक्का, सुरती का बटुआ, काली मिरजई, तैल स्नान से चिकनी बनी गाँठदार लाठी और निवाड़ से बनी खटपटी।

रेखाचित्रकार ने बूढ़े बाबा के सामान के साथ उनका हुलिया भी पेश कर दिया। 'सिर का अग्रभाग खल्वाट होने के कारण चिकना चमकीला था, पर पीछे की ओर कुछ सफेद केशों को देखकर जान पड़ता था कि भाग्य की कठोर रेखाओं से सभीत होकर वे दूर जा छिपे हैं। छोटी आँखों में विषाद, चिंतन और ममता का ऐसा सम्मिश्रित भाव था जिसे एक नाम देना संभव नहीं। लंबी नाक के दोनों और खिंची हुई गहरी रेखाएँ दाढ़ी में विलीन हो जाती थीं।'

रेखाचित्र : ठकुरी बाबा (महादेवी वर्मा)

नंगे पाँव और घुटनों तक ऊँची धोती पहने इस बूढ़े बाबा की लंबी सफेद दाढ़ी के बीच कुछेक काले बाल विचित्र-सा आकर्षण पैदा करते थे। यही थे ठकुरी बाबा। वे भाट वंश में पैदा हए थे। चारणों की

टिप्पणी

परम्परा के अवशिष्ट थे वे. अंत: उनका धंधा 'व्यक्तिगत मनोविनोद मात्र रह गया था। पैतृक धंधे के रूप में प्राप्त इस काव्य-कला के कारण वे दुनियादार आदमी कभी बन ही न सके। यही कारण था कि पैतक सम्पत्ति और जमीन-जायदाद की कभी फिक्र ही नहीं की और सौतेले भाइयों ने सांसारिकता से उन्हें अलग ही रखा। भौजाइयों ने ठकुरी की पत्नी की निंदा का अभियान जारी रखा ताकि उसकी गर्दन पर मेहनत-मशक्कत का कठोर जुआ लादा जा सके। रेखाचित्रकार महादेवी की टिप्पणी है - 'ठकुरी बेचारे कवि ठहरे। शुष्क यथार्थता उनकी भाव-बोझिल कल्पना के घटाटोप में प्रवेश करने के लिए रंध्र ही न पाती थी।'

काव्य-जनित अकर्मण्यता, भाइयों की उपेक्षा, भौजाइयों की व्यंग्य-वाणी आदि उनकी पत्नी की मर्म-पीड़ा का कारण थी। पर ठकुरी इसे भी न समझ पाते थे। वह इस लगातार उपेक्षा और यातना के बीच डेढ़ वर्ष की बालिका को छोड़कर प्रसूति-ज्वर से पीड़ित होकर अपने कठोर जीवन से मुक्त हो गई। पत्नी की मृत्यु के बाद ही वे वास्तविक पति और पिता बन सके। बेटी बेला के लिए वही बाप भी थे और माँ भी। दुर्भाग्य ऐसा कि जवान होते न होते बेला का पति चेचक के कारण अंधा हो गया। ससुर ने अंधे दामाद को भी काव्य की शिक्षा दे दी और घर चलाने के लिए जिस बूढ़ी मौसी को ठकुरी अपने घर ले आए, वह भी इसी काव्य-संगीत मंडली का हिस्सा बन गई।

ठकुरी चिकारा बजाकर भक्ति के पद गाते हैं, दामाद खंजरी पर तान संभालता है, बूढी मौसी तन्मय होकर मंजीरा झनकार देती है और बेला घर का झंझट सिर पर ओढे भागती-दौडती रहती है। ठकुरी के घर पर अब एक भैंस, दो पछाहीं गायें और थोड़ी-बहुत खेती है। अत: जीवन-यापन की मूलभूत समस्या अब उन्होंने हल कर ली है। लेकिन सहज स्वभाव और गहरी इन्सारी रिश्तेदारी के कायलठकुरी बाबा पूरे मस्तमौला और फक्कड़ थे। कोई गुड़ की एक डली के बदले उनसे आधा सेर आटा ले जाता है, कोई चार मिर्च देकर आलू शकरकंद का फलाहार पा जाता है, कोई तोला भर दही के बदले कटोरा भर चावल उड़ा ले जाता है और रत्ती भर घी देकर लुटिया भर दूध मांग लेता है। दूसरों को देने में, दूसरों की जरूरत के वक्त काम आने में ठकुरी को एक विशेष प्रकार का सुख मिलता है। 'वह भावुक और विश्वासी जीव हैं।' चिकारा हाथ में लेते ही उनके लिए संसार का अर्थ बदल जाता है। उदारता, सहज सौहार्द, सरल भावुकता आदि ग्रामीण जीवन की सहजता के लक्षणों के वे मूर्तिमान अवतार हैं।

कल्पवास के लिए वे जिस कुटुम्ब या टोली को साथ लाए हैं, उनमें विधवा ठकुराइन हैं जो परिवार की उपेक्षा के कारण ठकुरी की सहज अनुकम्पा पाकर फूली न समातीं, अपने पति से उपेक्षित एक सहुआइन हैं जो दो किशोर बालकों को पालने के लिए कठिन संघर्ष से गुजर रही हैं। इन दोनों के बाद ठकुरी के कुटुम्ब में एक विधुर काछी अपनी दो बेटियों के साथ मौजूद हैं। इनके अतिरिक्त, एक ब्राह्मण दम्पत्ति भी हैं।

भक्तिन और ठकुरी समेत पूरा कुटुम्ब कल्पवास की अवधि में माघी पूर्णिमा के पहले आने वाली त्रयोदशी की रात लेखिका के यहाँ भजन-कीर्तन का आयोजन करता है। ठकुरी चिकारा की खूटी ऐंठ रहे थे, अंधा दामाद खजड़ी बजा रहा था, बेला आरती-फूलबत्ती आदि का काम संभाले थीद्य सब मिल-जलकर गीत गाती हैं। औरतें भक्ति के गीत गाती हैं और ठकुरी ने अपने गीत सुनाए। सबको एक ही स्पंदन, एक ही पुलक और समान भावधारा ने बाँध रखा था। ग्रामीण जनों की स्वाभाविक शिष्टता, रस-विदग्धता और उनकी कर्मठता की तुलना में महादेवी ने शहरों में होने वाले कवि-सम्मेलनों की कृत्रिमता, उनके बाजारूपन और फूहड़पन पर भी बेबाक टिप्पणी की है। उनका कहना है - 'हमारे सभ्यता-दर्पित शिष्ट समाज का काव्यानन्द छिछला और उसका लक्ष्य सस्ता मनोरंजनश है। ठीक इसके विपरीत, भाट वंश में पैदा हुए गाँव गंवई के आशु कवि ठकुरी हैं। महादेवी कहती हैं कि उनसे अधिक

रेखाचित्र : ठकुरी बाबा
(महादेवी वर्मा)

टिप्पणी

सहृदय व्यक्ति उन्होंने कम ही देखे हैं। ठकुरी जैसे लोगों का 'बाह्य जीवन दीन है', पर अंत:जीवन संवेदनापूर्ण और समृद्ध है। ठकुरी गाँव के सहृदय समाज के प्रतिनधि हैं। रेखाचित्रकार की दृष्टि में 'उनकी सहृदयता वैयक्तिक विचित्रता न होकर ग्रामीण जीवन में व्याप्त सहृदयता को व्यक्त करती है।" नागरिक शिष्ट समाज में जैसे फीस लेकर कविगण सभा-सम्मेलन में पहुँचते हैं, ठकुरी इसके विपरीत कहीं विरहा गाने पहुंच जाते, कहीं आल्हा-ऊदले की कथा सुनाने मीलों पैदल जाने में भी न सकुचाते। तभी तो अर्थ की दृष्टि से कवि ठाकुरदीन सुदामा ही रह गए। ठकुरी बाबा को उनकी काव्य-कला का पुरस्कार क्या मिलता था? पथरौटी में सत्त पर नमक के साथ हरी मिर्च और अंगोछे के खूट में थोड़ा तिलगुड़। इधर, दो वर्ष से वे मेले में नहीं आए। दो वर्ष पूर्व जब वे आए थे तो शिथिल पड़ चुके थे। कंठ में लोच तो था पर कफ की घरघराहट उनके स्वर को बेसुरा बना देती थी। 'आँखों में ममता का वही आलोक था', पर जर्जर काया पर काल ने अपनी सर्वग्रासी छाया डाल दी थी। ठकुरी बोले अब चला-चली की बेला है। महादेवी ने पूछा - 'तुम स्वर्ग में कैसे रह सकोगे बाबा? वहाँ तो न कोई तुम्हारे कूट पद और उलट-बाँसियाँ समझेगा और न आल्हा-ऊदल की कथा सुनेगा। स्वर्ग के गंध र्व और अप्सराओं में तुम कुछ न जंचोगे।' ठकुरी ने जवाब दिया कि इस हकीकत से वे परिचित हैं। अत: वे वहाँ इतना शोर मचाएंगे कि भगवान जी उन्हें पृथ्वी की ओर ढकेल देंगे। तब पृथ्वी पर पुन: आकर वे धान रोपेंगे, क्यारियाँ बनाएँगे, चिकारा बजाएंगे और पूरे समाज को आल्हा-ऊदल की कथा सुनाएंगे। मुझे स्वर्ग नहीं चाहिए, पर नया शरीर माँगने के लिए वहाँ जरूर जाएंगे क्योंकि यह कम्बख्त शरीर तो जर्जर हो चुका है। और इतना कहने के बाद ठकरी तन्मय होकर गाने लगे - 'चलत प्रान काया काहे रोई राम।' महादेवी की स्मृति में उनके द्वारा गाया गया दूसरा गीत भी झंकृत हो उठता है - 'जागिए कृपानिधान पंछी बन बोले'। रेखाचित्रकार को ऐसा प्रतीत होता है मानो इस प्रभाती के द्वारा वे जागरण का संदेश दे रहे थे।

पूँजीवादी व्यक्तिवाद के युग की अंध भाग-दौड के बावजूद हमारे गाँवों और कस्बों में ठकुरी जैसे सहृदय और संवेदनशील लोग हजारों की तादाद में मौजूद हैं। सामूहिक सहृदयता और सहज मानवीयता के प्रतीक के रूप में ठकुरी का चरित्र एक प्रतिनिधि चरित्र है - वह अनूठा व्यक्तित्व है, पर उसके व्यक्तित्व के हर रंग, रेशे और पहलू पर सामूहिकता की छाप है। एक पात्र के रूप में ठकुरी के व्यक्तित्व को रेखांकित करने में महादेवी के गद्य की वर्णनात्मकता में ही उनकी कला की शक्ति अंतर्निहित है। ठकुरी का पूरा नाक-नक्श, हुलिया, वेशभूषा, रहनसहन, परिवार, कुटुम्ब और जीवन-संघर्ष मूर्तिमान होकर सामने आता है। रेखाचित्र के एक पाठ के बाद ही केंद्रीय पात्र के रूप में ठकुरी मन में अंकित हो जाते हैं और अपनी अविस्मरणीय छाप छोड़

3.4 'ठकुरी बाबा' में सामाजिक चेतना

संस्मरणात्मक रेखाचित्र एक ऐसी साहित्यिक विधा है जिसमें समाज की वास्तविकताओं से लेखक या लेखिका की टकराहट, तमाम तरह के लोगों से संबंध और संपर्क की अंत:क्रिया उल्लेखनीय स्पष्टता के साथ अनिवार्यत: व्यक्त होती है। महादेवी वर्मा अपनी कविताओं तथा अपने गीतों में यथार्थ के साथ अपनी टकराहट पर आवरण डाल देती हैं, पर रेखाचित्रों में ऐसा कर पाना संभव नहीं है। इसीलिए महादेवी के संबंध में यह भ्रम फैला कि वे कविताओं में तो रहस्यवादी हैं, पर रेखाचित्रों में यथार्थवादी है। दरअसल दो अलग-अलग प्रकार की साहित्यिक विधाओं में लिखी जाने वाली रचनाओं में विवेचन विश्लेषण के लिए जिस गहरी परखं और अलग-अलग प्रकार के औजारों की जरूरत है उसे नजरअंदाज करने के कारण ही यह भ्रांति फैली।

रेखाचित्र : ठकुरी बाबा (महादेवी वर्मा)

टिप्पणी

प्राय: सभी छायावादी रचनाकार सन 1930 के बाद गद्य-लेखन की आवश्यकता को गंभीर दायित्व के रूप में लेने लगे थे। निराला के उपन्यासों और कहानियों, प्रसाद के उपन्यासों और कहानियों तथा सुमित्रानन्दन पंत की कहानियों में यथार्थ चित्रण की वही प्रवृत्ति मिलती है, जिसका प्रवर्तन प्रेमचंद ने 1918 में ही कर दिया था। सन 1930 तक आते-आते स्वाधीनता आंदोलन की विभिन्न धाराओं, खासकर - किसान, मजदूर, युवा और स्त्री-समुदाय आदि के हितों के प्रश्नों पर उठ खड़े हुए जन-संघर्षों का साहित्य पर गहरा प्रभाव पड़ा और यथार्थवाद की प्रवृत्ति कहीं अधिक परिपक्व और पुष्ट हुई। महादेवी के रेखाचित्र इसी जीवंत यथार्थवादी प्रवृत्ति की प्रेरणाओं और दबावों को बड़ी गहराई से दर्शाते हैं।

इस बात को रेखांकित करने की जरूरत है कि इन रेखाचित्रों के ये पात्र प्राय: ही दलित-वंचित और पीड़ित सामाजिक समूहों के बीच से आते हैं। निर्धन, विपन्न और प्रताड़ित चरित्रों का एक विशाल भंडार महादेवी की गद्य-कृतियों का प्राण है। सेवक रामा, सेविका भक्तिन, भंगिन सबिया, साग-भाजी का विक्रेता अंधा अलोपी, कुम्भकार बदलू, पहाड़ी औरत लछमा, चीनी युवक, कुली जंग बहादुर और धनिया - आदि सभी ऐसे ही पात्र हैं जो अपने-अपने यथार्थ जीवन की विभीषिकाओं के साथ हिंदी साहित्य के चित्रागार में अमर हो गए हैं।

उपर्युक्त विश्लेषण से इतना तो आपको स्पष्ट हो ही गया होगा कि पात्रों के चयन में महादेवी की चेतना और मूल्य-दृष्टि किस तरह दलितों, वंचितों, प्रताड़ितों और उपेक्षितों की पक्षधर है। यह भी जाहिर हो जाता है कि महादेवी की सामाजिक चेतना गाँव, कस्बे और शहर से ऐसे चरित्रों और व्यक्तियों को ढूँढकर पाठको के सामने लाती है जो शोषण और रूढ़िवाद, उत्पीड़न और अंधविश्वास, सामाजिक असमानता और सड़े-गले रीति-रिवाज के चंगुल में फंसकर तडफडाते हैं तथा उनकी पीड़ा आपको बेचौन कर देती है। अन्यायपर्ण सामाजिक व्यवस्था और सड़े-गले रीति-रिवाजों पर रेखाचित्रकार की हैसियत से महादेवी की तीखी टिप्पणियों से यह न समझना चाहिए वे किसी राजनीतिक दल या विचारधारा की प्रेरणा से ऐसा कर रही थीं। वास्तविकता तो यह थी कि एक कलाकार के नाते उनकी संवेदना उन्हें विवश करती थी कि वे अपने वर्गीय संस्कारों की सीमा का अतिक्रमण करे और देश के गरीबों तथा पीड़ितों से अपने को जोड़े।

ठकुरी बाबा नामक रेखाचित्र में महादेवी गाँव-गवई के एक ठेठ, अदना से, भाट वंश में अवतीर्ण निर्धन कवि ठाकुरदीन सुदामा अर्थात् ठकुरी से अपने को जोड़ती है। कृत्रिम ढंग से आयोजित शहरी कवि सम्मेलनों में ऊँची-ऊँची फीस लेकर काव्य-पाठ के लिए आने वाले कविसमाज से भिन्न ठकुरी बाबा है जो किसी मचान पर बैठकर विरहा सुनाता है, बारहमासा के रसिक श्रोता को उसके बैलों का सानी-पानी देने के साथ-साथ काव्यानंद भी प्रदान करता है, होली पर कबीर सुनाने में अपनी भूख-प्यास भी भूल जाता है। ऐसे ही कवि को आप लोककवि या जन-कवि कहेंगे। महादेवी इस जन-कवि को अपेक्षित हमददी और 3 के साथ रेखांकित करने में भी एक नए ढंग की सामाजिक चेतना को व्यक्त करती हैं अर्थात कुलीन साहित्य के पाठक समुदाय को जन-जन के बीच प्रचलित साहित्य के सामाजिक आधार की महत्ता बताती हैं।

कहना चाहिए कि ठकुरी बाबा के माध्यम से कुलीन संस्कृति और जन-संस्कृति के बीच फर्क को पूरे तीखेपन के साथ उभारने में भी रेखाचित्रकार की यथार्थवादी और सकारात्मक सामाजिक चेतना का परिचय मिलता है।

निजी सम्पत्ति को लेकर परिवार के अंदर ही किस प्रकार का भेदभाव और अन्याय होता है, इसे दिखाने के लिए उन्होंने ठकुरी के परिवार का दो-टूक ढंग से वर्णन किया है।

टिप्पणी

'ठकुरी के सौतेले भाई बड़े और गृहस्थी वाले थे, इसी से घर-द्वार सब उन्हीं के अधिकार में रहा और छोटा भाई चाकरी के बदले में भोजन-वस्त्र पाता रहा। उसका कवित्व भाइयों के लिए लाभप्रद ही ठहरा, क्योंकि कोई भी कला सांसारिक और विशेषत: व्यावसायिक बुद्धि को पनपने ही नहीं दे सकती और बिना इस बुद्धि के मनुष्य अपने आपको हानि पहँचा सकता है, दूसरों को नहीं।'

छोटा भाई यदि कवि होने के नाते कमाऊ नहीं है तो कमाऊ बड़े भाई का नौकर-चाकर बनने को अभिशप्त है और उसकी पत्नी भी अपनी जेठानी की दासी बनने को विवश है। परिवार के अंदर के उत्पीड़न और स्वामी-दास संबंध को उद्घाटित कर महादेवी ने मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण के प्रश्न को ही गंभीरता से उठाया है।

गाँव में भी इंसानियत का लोप होता जा रहा है और 'मनुष्यता को विकास के लिए अवकाश मिलना कठिन हैश जैसे प्रश्न सामने रखकर महादेवी ग्रामीण अर्थव्यवस्था में पूँजीवाद के प्रभाव के प्रवेश से उत्पन्न समस्या को उद्घाटित करती है। उदारता, सहज सौहार्द, सरल भावुकता आदि गुण पहले ग्रामीण जीवन के लक्षण माने जाते थे, पर अब वहाँ भी 'सुलभ नहीं रहे।' इस दुर्लभ गुण के प्रतीक हैं -ठकुरी बाबा। उनके साथ सहआइन है. विधवा काछी है, ब्राह्मण दम्पत्ति हैं, वृद्धा ठकुराइन है और अंधा दामाद भी है। ठकुरी सर्वसुलभ हैं, सबकी मदद के लिए तैयार। उन्हें दूसरों की सहायता करने में ही विशेष प्रकार की आनंदानुभूति होती है। इस प्रसंग के चित्रण में आपने अनुभव किया होगा कि महादेवी परोपकार, उदारता, करुणा और परदु:ख कातरता के पक्ष में हैं, न कि अंधी स्वार्थपरता और व्यक्तिवाद के पक्ष में। शिक्षित पेशेवर वर्गों अर्थात् अफसरों, वकीलों, डॉक्टरों, व्यापारियों तथा प्राइवेट कंपनियों में ऊँची तनख्वाह पाने वाले प्रशासनिक अधिकारियों को आपं महानगरों और शहरी सभ्य समाज के रूप में देख सकते हैं। महादेवी इस खाते-पीते शिक्षित मध्य वर्ग तथा कलीन समदाय पर जिस तरह की टिप्पणी करती हैं, उससे उनके सामाजिक बोध और सामाजिक दृष्टिकोण का खुलासा होता है। ठकुरी बाबा में ही दो-टूक शब्दावली में उनका वक्तव्य है : 'हमारे सभ्यता-दर्पित शिष्ट समाज का काव्यानंद छिछला और उसका लक्ष्य सस्ता मनोरंजन मात्र रहता है।'

इतना ही नहीं ब्रिटिश साम्राज्यवादी शासन के तहत जो असमान विकास की पूँजीवादी नीति अपनाई गई, उसी के परिणामस्वरूप ग्रामीण और शहरी समाज के बीच हर दष्टि से अंतर होता गया। ग्रामीण समाज दैन्य और पिछड़ेपन की गिरफ्त में आता गया, और शहरी समाज विलासप्रियता तथा सस्ते आमोद-प्रमोद की प्रदर्शनप्रिय सभ्यता की अंधी दौड़ में शामिल हो। गया ठकुरी बाबा में पूँजीवादी सभ्यता के असमान विकास के अभिशाप से पीडति दो प्रकार की जीवन-प्रणालियों पर महादेवी ने अपनी गहरी सामाजिक चिंता व्यक्त की है :

'मेरी पर्णकुटी के दो बरामदे चांदनी से धुल गए थे - उनमें ठंडी जमीन, चादर पुआल आदि पर जो सृष्टि सो रही थी, उसके बाह्य रूप और हृदय में इतना अंतर क्यों है, यही मैं बार-बार सोच रही थी। उनके हृदय का संस्कार, उनकी स्वाभाविक शिष्टता, उनकी रस-विदग्धता, उनकी कर्मठता आदि का क्या इतना कम मूल्य है कि उन्हें जीवन-यापन की साधारण सुविधाएँ तक दुर्लभ हो जावें।'तथा, 'इन दोनों समाजों का अंतर मिटा सकना सहज नहीं। उनका बाह्य जीवन दीन है और हमारा अंतजीवन रिक्त। उस समाज में विकृतियाँ व्यक्तिगत हैं; पर सदभाव सामूहिक रहते हैं। इसके विपरीत हमारी दुर्बलताएँ समष्टिगत हैं; पर शक्ति वैयक्तिक मिलेगी।'

इस सामाजिक बोध को और अधिक समझने के लिए घीसा और मुन्नु की माई नामक रेखाचित्र अवश्य पढ़ना चाहिए।

रेखाचित्र : ठकुरी बाबा (महादेवी वर्मा)

टिप्पणी

इसके अतिरिक्त, पुरुष-प्रधान पितृसत्तात्मक समाज में स्त्रियों का जैसा उत्पीड़न होता है, उसके चित्रण में महादेवी की यथार्थवादी गद्य-कृतियाँ अपने संपूर्ण कलात्मक वैभव के साथ अपनी सृजनात्मक शक्ति का परिचय देती हैं। ठकुरी बाबा में यद्यपि इस दृष्टि से सिर्फ ठकुरी की पत्नी के उत्पीड़न और सहुआइन के छोटे से पीड़ित परिवार का उल्लेख हुआ है, जिसमें उसके पति 'गाँव की तेली बालिका को लेकर कलकत्ते में कर्तव्य पालन कर रहे हैं। विवाहित जीवन के डबल सर्टीफिकिकेट के समान दो-दो बिछुए पहनकर और नाक तक खिचे घूघट में वधू वंश की मर्यादा को सुरक्षित रखकर वे परचून की दूकान द्वारा जीवन-यापन करती है।'

हर माघ में वे अपने दो किशोर बालकों के साथ आकर कल्पवास की कठोरता सहती है और में साहूजी को पाने का वरदान माँगती है। पति ने उनका इहलोक बिगाड़ दिया है, पर अब उसके अतिरिक्त किसी और की कामना करके वे परलोक नहीं बिगाड़ना चाहती।' सहुआइन जैसी अनेक निस्सहाय औरतों की चरित्र-गाथाएँ 'अतीत के चलचित्रश और 'स्मृति की रेखाएँ' में अंकित हैं। इन चरित्रों के माध्यम से महादेवी मुख्यत: सामंती समाज के अंदर घुट रही, छटपटा रही स्त्रियों की दारुण अवस्था के चित्र खींचकर आज के नारीवादी आंदोलन की पूर्वपीठिका प्रस्तुत कर देती हैं। इस दृष्टि से लछमा, भाभी, बिबिया, गुंगिया और भक्तिन उल्लेखनीय हैं।

खेत मजदूरों, निर्धन किसानों, उत्पीडित स्त्रियों और उपेक्षित बच्चों पर केंद्रित रेखाचित्रों के माध्यम से महादेवी की तीव्र सामाजिक चेतना से आपका साक्षात्कार होता है। पर कल्पवास जैसे धार्मिक-सांस्कृतिक रिवाज के बारे में अपनी व्याख्या प्रस्तुत करके लेखिका लोक-विश्वासों और लोक-रीतियों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और मूल प्रेरणा का भी खुलासा करती हैं :

'किसी समय कल्पवास का कितना महत्व रहा होगा, इसका अनुमान लगाने के लिए इसका आज का समारोह भी पर्याप्त है। संभवत: उस समय देश के विभिन्न खण्डों में रहने वाले व्यक्तियों को मिलन, उनके पारस्परिक परिचय, विचारों के आदान-प्रदान तथा सांस्कृतिक समन्वय का यह महत्वपूर्ण साधन रहा होगा। ये नदियाँ इस देश की रक्तवाहिनी शिराओं के समान जीवन-दायक रही हैं, इसी से इनके तट पर इस प्रकार के सम्मेलनों की स्थिति स्वाभाविक और अनिवार्य हो गई हो, तो आश्चर्य नहीं। आज इस संबंध में क्या और हम भूल चुके हैं पर बिना जाने लीक पीटना धर्म बन गया है।'

'मुझे इस कल्पवास का मोह है क्योंकि इस थोड़े समय में जीवन का जितना विस्तृत ज्ञान मुझे प्राप्त हो जाता है उतना किसी अन्य उपाय से संभव नहीं। और जीवन के संबंध में निरंतर जिज्ञासा मेरे स्वभाव का अंग बन गई है।'

अपने धार्मिक-सांस्कृतिक इतिहास को देखने की इस वैज्ञानिक दृष्टि के मूल में महादेवी की प्रखर सामाजिक चेतना को रेखांकित किया जाना चाहिए। अपनी इस दृष्टि से वे केवल अतीत पर ही दृष्टिपात नहीं करती बल्कि वर्तमान को भी व्याख्यायित करती हैं। उन्होंने भाभी, लछमा, बिबिया, बालिका माँ, मुन्नु की भाई, और घीसा जैसे रेखाचित्रों में और अधिक विस्तार से धर्म के संकीर्ण, स्वार्थी और जड़ चरित्र का बेबाक चित्रण किया है।

महादेवी का तीव्र सामाजिक बोध केवल चेतना और भावना के स्तर तक ही सीमित नहीं है। यद्यपि यह प्रसंग यहाँ बहुत अधिक चर्चा का विषय नहीं हो सकता, पर यह उल्लेखनीय अवश्य है कि अपने लौकिक कर्म और जीवन के स्तर पर भी महादेवी समाज-सेवा और परोपकार के निजी उदाहरणों से लोगों को प्रेरित करती रहीं।

रेखाचित्र : ठकुरी बाबा
(महादेवी वर्मा)

टिप्पणी

संस्मरणात्मक रेखाचित्र की कला और भाषा शैली पर विचार करते समय यह याद रखना आवश्यक है कि इनमें 'अतीत समय का अंधकार पार कर वर्तमान में लौटता है।' महादेवी ने स्वयं ही रेखाचित्र की साहित्यिक विधा के संदर्भ में 'स्मृति चित्र' नामक अपनी पुस्तक की भूमिका में इस निर्णायक पहलू पर जोर दिया है। जिनके अभाव की उन्हें तीव्र अनुभूति है, उन समय की धूल पोंछ-पोंछ कर पहले वह वह अपने मनोजगत के सूने कमरे में ले आती हैं और उनके साथ अपने आत्मीय संबंध को पुनः जीवित करती हैं। स्मृति कुंज में आत्मीय संबंध वाले व्यक्तियों और पात्रों को पुनजीवित कर सशरीर मूर्त करने के क्रम में महादेवी ऐसी गद्य-भाषा का अन्वेषण करती हैं जिसमें वर्ण्य चरित्र और रेखाचित्रकार-दोनों का योगदान हो, जिसमें व्यक्ति और घटना प्रसंग की चित्रमयता की क्षमता हो, जिसमें ऐंद्रिकता, भावना और विचारदृष्टि तीनों का समावेश हो और जिसमें नाटकीय संवादशीलता चरित्रों की आंचलिकता को मुखर कर सके।

ठकुरी बाबा नामक संस्मरणात्मक रेखाचित्र में उल्लिखित ये सारी विशेषताएँ साफ-साफ झलकती हैं। कटा छंटा हुआ, परिष्कृत संशोधित और चुस्त गद्य-लेखन का जो स्वरूप छायावादी कवियों ने विकसित किया, ठकुरी बाबा नामक रेखाचित्र की गद्य-भाषा उसी प्रक्रिया की परिण ति है। द्विवेदीयुगीन गद्यकारों की भाषा से यह भिन्न भाषा थी। इस गद्य लेखन में हिंदी को परिनिष्ठित स्वरूप प्रदान करने की ही चिंता नहीं है बल्कि हिंदी भाषी क्षेत्र के जनसमुदायों की विभिन्न बोलियों के शब्द-भंडार, क्रिया-रूपों और मुहावरों से समृद्ध करने की चिंता भी है। इतना ही नहीं, वर्ण्य चरित्र अपनी विशिष्टता बनाए रखते हैं और अपनी ही जन-बोली में बोलते हैं। महादेवी खड़ी बोली के शिष्ट गद्य में उनकी गंवई भाषा अथवा उक्तियों का रूपांतर न प्रस्तुत करके उस प्रसंग की सजीवता और चरित्र की आंचलिकता (जनपदीयता) को सुरक्षित कर देती है। जैसे ठकुरी बाबा में ही, भक्तिन अपनी बोली में बोलती है, ठकुरी बाबा भी अपनी देहाती बोली बानी का दामन पकड़े रहते हैं, और कल्पवास में आया उनका पूरा कुटुम्ब भी महादेवी से ग्रामीण भाषा में ही बात करता है। उदाहरण के लिए, प्रारंभ में ही भक्तिन कहती है : 'कल्पवास की उमिर आई तब उही हुई जाई। का एकै दिन सब नेम-धरम समापत करै की परतिग्या है।'

रेखाचित्र : ठकुरी बाबा

कल्पवास की कुटी में संध्या समय जब ठकुरी अपने कुटुम्ब के साथ आ धमकते हैं और बसेरा की प्रार्थना करते हैं तो अपनी बोली में कहते हैं- 'बिटिया रानी का हम परदेसिन का ठहरै न देहो? बड़ी दूर से पाँच पियादे चले आइत है। ई तो रैन बसेरा है- भोर भयो उठि जाना रे का झूठ कहित है? हम तो बूढ़-बाढ़ मनई हैं।' अंत में जब महादेवी पूछती हैं कि ठकुरी स्वर्ग में कैसे रह पाएंगे? वहाँ न तो कोई उनके कूट पद और न उनकी उलटबासियाँ समझ पाएगा और न आल्हा-ऊदल की कथा ही कोई सुनेगा। स्वर्ग के गंधर्व और अप्सराओं में वे कुछ अँच नहीं पाएंगे। अपनी सहज बुद्धि से नाटकीय अंदाज में ठकुरी कहते हैं : 'सो तो हम जानित हैं बिटिया! हम उहाँ अस सोर मचाउब कि भगवानजी पुन धरती पै ढनकाय देहैं। हम फिर धान रोपब, कियारी बनाउब, चिकारा बजाउब और तुम पचौ का आल्हा ऊदल की कथा सुनाउब। सरग हमका न चही, मुदा हम दूसर नवा शरीर मांग बरे जाब जरूर। ई ससुर तो बनाय कै जरजर हुइगा।'

महोदवी के स्मृति-लोक में चरित्र या वर्ण्य पात्र हू-ब-हू साकार हो जाता है अपनी ही बोली बानी और विशिष्ट प्रकार के नाटकीय तेवर के साथ। इसे गद्य के साँचे में ढालने के लिए महादेवी अपने गद्य की चस्ती और ठोंक-पीटकर रची गई शालीनता को समानांतर प्रस्त दो अलग-अलग वर्गों के बीच

रेखाचित्र : ठकुरी बाबा
(महादेवी वर्मा)

टिप्पणी

अंत:क्रिया का स्वरूप भी स्पष्ट कर देती हैं। इससे चरित्रों में। ग्रामीण संस्पर्श की जीवंतता बनी रहती है और उनके जीवन का यथार्थ भी मुखर रूप में प्रकट हो जाता है।

दरअसल रेखाचित्रकार के नाते महादेवी की कला मूलत: वर्ण्य पात्रों को एक ओर जहाँ टाइप चरित्र के रूप में चित्रित करने में सफल हुई हैं, वहीं उन पात्रों की अजीबोगरीब निजी विशिष्टता को भी अंकित करने की प्रतिज्ञा पूरी करती हैं। इसलिए ठकुरी देहाती अंचलों के आशु जन-कवि के रूप में अपनी विशिष्टता भी दर्शाता है। इसके साथ गाँव के लोगों की परोपकार भावना, सहजता, सरलता, सहृदयता, घर फूंक मस्ती और भीषण परिस्थितियों में जूझने . वाला जीवट भी उसके सामूहिक जीवन के अंतर्भूत गुण के रूप में उभरते हैं।

रेखाचित्र में लिए गए पात्र का अंतर्बाह्य जीवन तभी पूरी तरह उभर पाता है जब उसका हुलिया नख-शिख, नाक-नक्श, व्यक्तित्व इस तरह वर्णित हो कि पात्र का स्वरूप पूरी तरह उभर आए। इसके साथ, उस पात्र के जीवन की झाँकी देने के लिए, उसके भाव, विचार, संस्कार दर्शाने के लिए उसके जीवन के अंतर्विरोधों और परिवेशों की भी झांकी प्रस्तुत करनी होती है। अगर इस दृष्टि से देखें तो आपको पता चलेगा कि जिस क्षण ठकरी का मंच पर अवतरण होता है उसी क्षण महादेवी वर्मा एक सामान्य-सा हुलिया पेश करती हैं : 'एक वृद्ध के नेतृत्व में बालक, प्रौढ़, स्त्री पुरुष आदि की सम्मिश्रित भीड़ थी। गठरी-मोटरी, बरतन, हुक्का-चिलम, चटाई, पिटारा, लोटा-डोर सब गृहस्थी लादे फांदे यह अनियंत्रित अभ्यागत मेरे बरामदे में कैसे आ घुसे, यह समझना कठिन था।' देहाती ठकुरी बाबा के संपूर्ण कुटुम्ब के प्रवेश के लिए जिन चीजों - गठरी, मोटरी आदि का उल्लेख किया गया है, उनके लिए जन-भाषा से ही सारी संज्ञाएं ली गई हैं ताकि कुलीन लोगों से भिन्न इस देहाती समुदाय का चित्र आँखों के सामने सजीव हो सके। यह बात निर्विवाद है कि अपने रेखाचित्रों में महादेवी पात्रों के जीवन प्रसंगों और उनके सहचयीं को अंकित करने के लिए उन पात्रों द्वारा उपयोग में लाई जा रही संज्ञाओं, क्रियाओं, लोकोक्तियों आदि का बड़ा सटीक इस्तेमाल करती हैं। इससे चित्र और वर्णन में यथार्थता आती है, और वायवी काल्पनिकता का कोहरा रचना को आच्छन्न नहीं कर पाता। 'अतीत के चलचित्र' में पहाड़ी युवती लछमा के चेहरे को अंकित करते हुए महादेवी ने बताया कि धूप से झुलसा हुआ उसका मुख ऐसा जान पड़ता है कि जैसे किसी ने कच्चे सेब को आग की आँच पर पका लिया हो। आलंकारिक भाषा में इसे उत्प्रेक्षा कहते हैं। समाज और व्यवस्था ने लछमा के साथ जो सलूक किया है उसे दर्शाने के लिए और पाठकों के हृदय में करुणा उत्पन्न करने के लिए वर्णन की इस कला का महादेवी पूरा उपयोग करती हैं। 'अतीत के चलचित्र' में ही रामा के काले कलूटे शरीर के वर्णन के साथ उसकी सफेद चमकती हुई दंत-पंक्तियों का वर्णन आता है : 'किसी थके झुंझलाए शिल्पी की अंतिम भूल जैसी अनगढ़ मोटी नाक, साँस के प्रवाह से फैले हुए से नथने, मुक्त हँसी से भरपूर फूले हुए द्य से ओंठ तथा काले पत्थर की प्याली में दही की याद दिलाने वाली सघन और सफेद दंतपंक्ति।'

सादृश्य झलकाने के लिए लाए गए उपमान रेखांकन और चित्रांकन के अनूठे औजार हैं। चित्रकला के अंतर्गत पोर्टेट में जो काम रंगों और रेखाओं से लिया जाता है, रेखाचित्र की कला में वर्णन, इतिवृत्त अंकन आदि की सहायता के लिए सादृश्य विधान और रूपांकन होते हैं। ठकुरी का चित्र अगर आप ध्यान से देखें तो स्पष्ट हो जाएगा कि यह किस प्रकार का पोर्टेट है।

'सिर का अग्रभाग खल्वाट होने के कारण चिकना चमकीला था, पर पीछे की ओर कुछ सफेद केशों को देखकर जान पड़ता था कि भाग्य की कठोर रेखाओं से सभीत होकर वे दूर जा छिपे हैं। छोटी आँखों में विषाद, चिंतन और ममता का ऐसा सम्मिश्रित भाव था जिसे एक नाम देना संभव नहीं। लम्बी नाक के दोनों ओर खिंची हुई गहरी रेखाएँ दाढ़ी में विलीन हो जाती थीं। ओठों में व्यक्त भावुकता को विरल

रेखाचित्र : ठकुरी बाबा
(महादेवी वर्मा)

टिप्पणी

मूंछे छिपा लेती थीं और मुख की असाधारण चौड़ाई को दाढ़ी ने साधारणता दे डाली थी। सघन दाढ़ी में कुछ लम्बे सफेद बालों के बीच में छोटे काले बाल ऐसे लगते थे, जैसे चाँदी के तारों में जहाँ-तहाँ काले डोरे उलझकर टूट गए हों। ठकुरी का ही दूसरा चित्र जिसमें क्रमशः उनकी शारीरिक जर्जरता का रेखांकन महादेवी ने इस प्रकार किया है :

'मुख पर वैसी ही उन्मुक्त हँसी का भाव था, पर मानो धीरे-धीरे साथ छोड़ने वाले दाँतों को याद रखने के लिए ओठों ने अपने ऊपर स्मृति की रेखाएँ खींच ली थीं।'

विशेषण, भाववाचक संज्ञाएँ, उपमान योजना और चेहरे के वर्णन में क्रमिकता रेखाचित्रकार की वर्णनात्मक भाषा शैली के मुख्य पहलू हैं। ऐसे वर्णनों के वक्त प्रायः ही लम्बे जटिल वाक्य रूपांकन के स्वतंत्र अनुच्छेद के रूप में ढलकर सामने आते हैं। लेखिका का उद्देश्य है- पात्र के शारीरिक व्यक्तित्व, उसके अंतरंग जीवन की भावात्मकता आदि से आपका परिचय कराना ताकि उसे आप जीते-जागते प्राणी के रूप में देख सकें। रूप वर्णन के इन अनुच्छेदों के वाक्य भी इस तरह गढ़े गए हैं कि लेखिका अपनी टिप्पणी भी उसके अंदर डाल दे। उपर्युक्त उद्धरण में ही खल्वाट सिर के पिछले हिस्से के बालों के संबंध में महादेवी का वर्णन है- 'भाग्य की कठोर रेखाओं से सभीत होकर वे दूर जा छिपे हैं।' वृद्ध ठकुरी बाबा के दुर्भाग्य पर लेखिका की टिप्पणी इससे स्पष्ट हो जाती है।

कर्म के मैदान में और समाज के अन्य लोगों से आदान-प्रदान के क्रम में ठकुरी का गतिशील चित्र खींचने में महादेवी की भाषा की त्वरा और लोच, वाक्य-विधान के अंतर्गत संघात निम्नलिखित प्रसंग में द्रष्टव्य है - 'कहीं बिरहा गाने का अवसर मिल जाता, तो किसी के मचान पर बैठकर रात-रात भर खेत की रखवली करते रहते। कोई बारहमासा वाला रसिक श्रोता मिल जाता, तो उसके बैलों का सानी-पानी करने में भी हेठी न समझते। कोई आल्हा ऊदल की कथा सुनना चाहता तो मीलों पैदल दौड़े जाते। कहीं होली का उत्सव होता, तो अपने कबीर सुनाने में भूख-प्यास भूल जाते।'

इसी रेखाचित्र में ठकुरी के आतिथ्य प्रेम, परोपकारी और सहज दानशील स्वभाव के प्रसंग में भी ऐसी ही वाग्धारा की आवृत्ति देखी जा सकती है:

'कोई गुड की डली रखकर ठकुरी बाबा से आध सेर आटा ले जाता है, कोई चार मिर्च देकर आलू-शकरकंद का फलाहार प्राप्त कर लेता है। कोई पत्ते पर तोला भर दही रखकर कटोरा भर चावल नापता है। कोई धूप के लिए रत्ती भर घी देकर लुटिया भर दूध चाहता है।'

महादेवी की गद्य कृतियों की भाषा हमेशा वर्ण्य पात्र के जीवन आख्यान की आवश्यकता के अनुसार दो स्तरों पर शब्द चयन करती है। पहला स्तर तो तत्सम प्रधान संस्कृतनिष्ठ शब्दावली का है जिसमें बछड़ा के स्थान पर वत्स, चंवर की जगह चामर, रोयाँ के बजाय रोम, गमी की छुट्टी की जगह ग्रीष्मावकाश जैसे प्रयोग उन्हें प्रिय हैं। दूसरा स्तर उपेक्षित, दलित और गाँवगंवई के ग्रामीण पात्रों की तद्भव और देशज शब्दावली का है। इन दो स्तरों पर समानांतर रूप में चलने वाली गद्य-भाषा गंभीरता और सहजता, परंपरागत सांस्कृतिक जीवन के शिष्ट स्वरूप और समकालीन अनपढ़ आबादी की जन-संस्कृति के बनते-बिगड़ते स्वरूप के बीच के गहरे रिश्ते को उद्घाटित करती है। इनके बीच कहीं-कहीं अंग्रेजी के आवश्यक उपयोगी शब्द भी ज्यों के त्यों आ गए हैं। मसलन, स्प्रिंगदार, ज, स्टल, डामा. ऑपरेशन, फोटो इन्लार्जमेंट, सप्लाई, डेड लेटर, ऑफिसर, क्ले मॉडल आदि। अनेक स्थलों पर शुक्राचार्य, विश्वकर्मा मयदानव, मनु, संजय, धृतराष्ट्र, भीष्म, कृष्ण, द्रोणाचार्य, दुर्मुख, दुर्वासा. कण्व, शकुंतला, तपस्यारत शूद्र, एकलव्य आदि के पौराणिक प्रसंग स्मित हास्य, व्यंग्य और सादृश्य वर्णन में सहायक हो गए हैं। आलंकारिकता की दृष्टि से प्रायः उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, निदर्शना और उदाहरण का उपयोग किया गया है।

रेखाचित्र : ठकुरी बाबा (महादेवी वर्मा)

टिप्पणी

महादेवी के रेखाचित्रों की गद्य-भाषा की उपर्युक्त उल्लिखित विविध विशेषताएँ उनके गद्यशिल्प को आकार देने में, एक स्वरूप प्रदान करने में कहना चाहिए नई उदभावना और तकनीक में मददगार रही हैं। इन संस्मरणात्मक रेखाचित्रों की विधा को लेकर हिंदी के प्रौढ़परिपक्व पाठकों और सुधी आलोचकों के बीच भी मतभेद रहा है। कुछ लोग इन रचनाओं को संस्मरण की संज्ञा देते हैं, कुछ कहानी की और कुछ लोग स्केच, रेखाचित्र या पोर्टेट कहते हैं। दरअसल इन रेखाचित्रों में आख्यान अथवा कथा का तत्व प्रमुखता से उजागर होता है। अपने स्मृति-लोक में बसे पात्रों की आशा-निराशा, जय-पराजय और दु:ख-सुख को समाज और दुनिया के बहु-स्तरीय परिवेश में महादेवी अंकित करती हैं। इसलिए उनकी एक कहानी भी होती है, उसमें घटनाओं के मोड़ और उतार-चढ़ाव भी होते हैं। अत: यह नहीं कहा जा सकता कि ये रेखाचित्र कुतूहल से रहित और घटना-शून्य पात्रों की जीवन-कथा हैं। कहना चाहिए कि ये वृत्तमूलक व्यक्ति चित्र तो हैं ही, पर इन पात्रों के व्यक्तित्व पर लेखिका से उनके संबंधों का रंग भी प्रगाढ़ रूप में चढ़ गया है। महादेवी अपनी स्मृति के सूने कक्ष में अपने संसर्गों के परिणामस्वरूप इन पात्रों को जिस रूप में पुनर्जीवित करती हैं, उसी रूप में पाठकों के आगे मूर्तिमान भी करती हैं और चाहती हैं कि पाठक उनकी ही करुणा या अनुकम्पा, उनकी ही ममता या प्यार भरी झिड़क, उनके ही संस्कार या दृष्टिकोण से उन पात्रों को अपनाएँ - 'इनके प्रकाशन के संबंध में मैंने कुछ सोचा ही नहीं। चिंतन की प्रल्येक उलझन के हर एक स्पन्दन के साथ छापेखाने का सुरम्य चित्र मेरे सामने नहीं आता। इसके अतिरिक्त, इन संस्मरणों के आधार, प्रदर्शनी की वस्तु न होकर मेरी अक्षय ममता के पात्र रहे हैं। उन्हें दूसरों से आदर मिल सकेगा, इसकी परीक्षा से प्रतीक्षा रुचिकर जान पडी। (अतीत के चलचित्र - अपनी बात) महादेवी के रेखाचित्र के शिल्प की यही शक्ति और यही सीमा भी है। वर्णनशीलता का ऐसा गद्य-शिल्प आपको महादेवी के यहाँ ही मिलेगा जिसमें यत्र-तत्र उनकी अपनी दृष्टि से अंतर्भूत टिप्पणी वाक्यांशों में बद्धमूल दिखाई दे। यानी उन पात्रों को महादेवी की ही भावदृष्टि से आप देखें - 'उन मानव-हृदयों में उमड़ते हुए भाव समुद्र की जो स्पर्श मधुर तरंग मुझे छू भर गई थी, उसी की स्मृति मेरे मानस तट पर न जाने कितने विरोधी चित्र आँकने लगी। कितने ही विराट कवि सम्मेलन, कितनी ही अखिल भारतीय कवि गोष्ठियाँ मेरे स्मृति की। धरोहर हैं। मन ने कहा खोजो तो उनमें कोई इससे मिलता हुआ चित्र -और बुद्धि प्रयास में थकने लगी।'

डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी ने महादेवी के रेखाचित्रों की भाषा को 'सर्जनात्मक भाषा' कहते हुए लिखा है कि 'महादेवी वर्मा का गद्य पहली बार लगता है कि काव्य-रूपों से ऊपर उठकर अपने में सर्जनात्मक लेखन है, जो आधुनिक काल को 'गद्य-काल' कहे जाने का महत्वपूर्ण साक्ष्य प्रस्तुत करता है।' (हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, पृ.195)

3.6 'ठकुरी बाबा' का मूल्यांकन

हिंदी में रेखाचित्र नामक जिस साहित्यिक विद्या का उद्‌भव और विकास हुआ, उसके उदाहरण अंग्रेजी या अन्य यूरोपीय साहित्य में उपलब्ध नहीं है। कुछ व्यक्तियों, साहित्यकारों, राजनेताओं, वैज्ञानिकों आदि के बारे में संस्मरणात्मक कृतियाँ अंग्रेजी या यूरोपीय साहित्य में मिल जाती हैं, पर रेखाचित्र या स्केच नहीं मिलते। दरअसल हिंदी में इस साहित्यिक कला का आर्विभाव चित्रकला में प्रचलित रेखांकन और पोर्टेट के आधार पर हुआ है। 'इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका' में भी अंग्रेजी साहित्य की एक साहित्यिक विधा के रूप में स्केच का कोई जिक्र नहीं है, पर चित्रकला के इतिहास के अंतर्गत पोर्टेट का जिक्र अवश्य ही है। रेनेसा के बाद जब चित्रकला के क्षेत्र में लौकिक पात्रों (गैर-ईश्वरीय) को विषय बनाया गया तभी पोर्टेट की कला एक विशिष्ट शाखा के रूप में अवतरित हुई।

रेखाचित्र : ठकुरी बाबा (महादेवी वर्मा)

टिप्पणी

हिंदी में रेखाचित्रकार के रूप में महादेवी वर्मा, रामवृक्ष बेनीपुरी, कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' आदि का अभ्युदय सन् 30 के बाद होता है। यह वह समय है जब साहित्य के क्षेत्र में यथार्थवादी प्रवृत्तियों का विकास निरंतर नए-नए रूपों में दृष्टिगत होता है और गद्य के क्षेत्र में नए-नए रूपगत प्रयोग हो रहे हैं। समाज और देश की वास्तविकताओं के बहुरूपी आयामों को लेखन का विषय बनाने की सांस्कृतिक आवश्यकताओं के तहत गद्य में भी नई उद्‌भावना और प्रयोगशीलता के उदाहरण के रूप में रेखाचित्रों को स्वीकृति मिलने लगी। इनमें अजीब किस्म का आकर्षण और अनूठापन था और वर्ण्य पात्रों का साक्षात्कार कराने की अद्‌भुत शक्ति भी। ये ऐसे पात्र थे जो सीधे-सीधे जीवन से उठा लिए गए थे और जिनपर धरती की धूल भी चढ़ी हुई थी। दलित और उत्पीडित आम जनता के बीच के ये जाने-पहचाने चेहरे थे जो गद्य की नई कला के फ्रेम में कांट-छांट कर पेश किए गए थे। इन रेखाचित्रों को अविलम्ब लोकप्रियता मिलने लगी। महादेवी द्वारा लिखित 'अतीत के चलचित्र', 'स्मृति की रेखाएँ' आदि तथा रामवृक्ष बेनीपुरी द्वारा लिखित 'माटी की मूरते', 'गेहूं और गुलाब' अविस्मरणीय क्लासिक कृतियों के रूप में आज भी याद की जाती हैं। अन्य रेखाचित्रकारों में बनारसीदास चतुर्वेदी, श्री राम शर्मा, देवेन्द्र सत्यार्थी, कन्हैया मिश्र 'प्रभाकर', सत्यवती मलिक और ओंकार शरद के नाम उल्लेखनीय हैं। 'हंस', 'रूपाभ', 'विशाल भारत', 'कल्पना', 'अजंता' और 'नई धारा' पत्रिकाओं का रेखाचित्र के विकास में सराहनीय योगदान रहा है।

रेखाचित्र न तो संपूर्ण कथा होती है और न किसी पात्र का संपूर्ण जीवनवृत्त। वस्तुतः एक निश्चित दृष्टिकोण से किसी व्यक्ति, पात्र अथवा चरित्र के कुछेक पहलुओं का गतिशील प्रतिबिंब ही शब्द चित्र, रेखाचित्र या स्केच का साहित्यिक आकार ग्रहण कर लेता है। डॉ. नगेन्द्र ने विचार और विश्लेषण नामक अपनी पुस्तक में 'ऑक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी' में स्केच के संबंध में दी गई परिभाषा को आधार बनाते हुए यह कहा है कि जब चित्रकला का यह शब्द साहित्य में आया तो इसकी परिभाषा भी स्वभावतः इसके साथ आई अर्थात रेखाचित्र ऐसी रचना के लिए प्रयुक्त होने लगा जिसमें रेखाएँ तो हों पर उनमें रंग न हो। दूसरे शब्दों में कथानक का विस्तार न हो, तथ्यों का विश्लेषण न हो सिर्फ उनका उदघाटन मात्र हो।' ऑक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी में स्केच की परिभाषा दी गई है - श्ऐसा संक्षिप्त वर्णन जो प्रमुख या मुख्य तथ्यों का आख्यान करता हो, न कि पूरा ब्यौरा देता हो।' कहना न होगा कि इस प्रकार की परिभाषाओं में बताई गई सीमा का अतिक्रमण करते हुए हिंदी में लिखे गए रेखाचित्रों ने सर्वथा नए रूप में अपना विकास किया।

रेखाचित्र : ठकुरी बाबा

कभी-कभी रेखाचित्र और व्यक्ति-केंद्रित संस्मरण के बीच फर्क करना बड़ा मुश्किल होता है। परिभाषा की दृष्टि से तो यह मान लिया गया था कि रेखाचित्र विषय-प्रधान होता है और संस्मरण विषयी - प्रधान। पर महादेवी के संस्मरण भी विषय-प्रधान बन गए हैं, महादेवी ही नहीं, अनेक लेखकों की ऐसी कृतियाँ हैं। ; 'अतीत के चलचित्र' नामक रेखाचित्र संकलन की भूमिका में महादेवी ने स्वीकार किया है कि इन स्मृति-चित्रों में उनका जीवन भी आ गया है पर उनका जीवन वर्ण्य पात्र को एक संदर्भ प्रदान करते हुए हाशिए के तौर पर ही आता है, अतः इन रेखाचित्रों में लेखिका की आत्मीयता प्रकट होती है, आत्मपरकता या आत्मग्रस्तता नहीं। अपनी भावना की तूलिका से इन चित्रों को बेशक उन्होंने ही अंकित किया है।

रेखाचित्र : ठकुरी बाबा (महादेवी वर्मा)

महादेवी के रेखाचित्रों में ठकुरी बाबा की चर्चा कम ही हुई है। रामा, घीसा अलोपी बदलू, लछमा, भक्तिन, चीनी फेरी वाला आदि की चर्चा खूब की जाती रही है। इसका मतलब यह नहीं कि रेखाचित्र की कसौटी पर यह कोई नगण्य रचना है। सच्चाई तो यह है कि महादेवी के प्रारंभिक रेखाचित्रों की

टिप्पणी

लोकप्रियता के बवंडर में बाद वाले काल की यह रचना चर्चा के केंद्र में आई ही नहीं। चर्चा से बाहर होने के कारण इस रेखाचित्र में किए गए नए प्रयोगों का उल्लेख तक कहीं नहीं मिलता है।

महादेवी वर्मा द्वारा लिखित कोई भी रेखाचित्र इतना सुदीर्घ नहीं है। इस रेखाचित्र में ठकुरी बाबा का नाटकीय अवतरण काफी बाद में होता है, जबकि प्रारंभ में भक्तिन और कल्पवास का ही विशद वर्णन है। दूसरी बात यह कि ठकुरी के जन्म, उसके परिवार, उसके विवाह, पत्नी की मृत्यु, अंधे दामाद के साथ बेला के विवाह आदि प्रसंगों के साथ ठकुरी के साथ आई हुई पूरी टोली के सभी पात्रों का बारी-बारी से वर्णन होता है। अगर सिर्फ ठकुरी के जीवनवृत्त और। व्यक्तित्व से संबंधित प्रसंग को लिया जाए तो इस लंबे रेखाचित्र को मात्र एक तिहाई पृष्ठों में संशोधित संपादित कर उसका नया संस्करण प्रस्तुत किया जा सकता है। संपादन की इस प्रक्रिया में शहरी कवि सम्मेलन के प्रसंग के साथ-साथ जनकवियों से उसकी तुलना के क्रम में आई हुई टिप्पणियाँ भी छाँटकर अलग की जा सकती हैं। पर इस प्रकार की काँट-छाँट और संपादकीय कैंची से इस रेखाचित्र की कोलाज शैली ही नष्ट हो जाएगी। ग्रामीण जीवन के सामूहिक स्वरूप की साहचर्यगत सरलता और परोपकार भावना को उभारने के लिए ही महादेवी ने सहुआइन, काछी, बूढ़ी मौसी, ब्राह्मण दम्पत्ति आदि के शब्द चित्र अंकित किए हैं। इनके बीच ठकुरी नामक जनकवि की फक्कड़ विशिष्टता तथा अजीबो-गरीब ढंग से अचंभे में डालने वाली उसकी सहृदयता का जीवंत रेखांकन होता है। कुलीन संस्कृति के बरक्स जन संस्कृति की तुलनीय स्थिति का वर्णन इस रेखाचित्र को एक विराट सामाजिक संदर्भ प्रदान करता है। नष्टप्राय: और मरणोन्मुख जनसंस्कृति के प्रति हमदर्दी और अपनी विरासत के रूप में उसे बचाए रखने की चिंता के प्रतीक पुरुष के रूप में ठकुरी हैं, जिनके साथ महादेवी की साझेदारी तो है ही, अन्यों को भी इस स्थिति पर विचार करने के लिए एक आमंत्रण यहाँ मिलता है। समकालीन समाज में स्वार्थपरता और लोभवृत्ति के बढ़ते दबाव के बीच ठकुरी बाबा और उनके संगी-साथी मानव धर्म की खोती जा रही विरासत के अवशेष प्रतीत होते हैं। एक संस्कृति-कमी के नाते महादेवी की टिप्पणी सार्थक नहीं होती, अगर ठकुरी बाबा में वे गहरी संवेदनशीलता के साथ इस विरासत की रक्षा का एहसास न कराती। अत: यह रेखाचित्र किसी दलित उपेक्षित पात्र के सीमित जीवन-खंड का स्केच न होकर ठकरी के व्यक्तित्व के अंकन के बहाने ठेठ देहाती आबादी के पिछड़ेपन के बावजूद उसकी स्वस्थ सकारात्मक जनसंस्कृति को बचाने का खुला आह्वान बन गया है। इस रेखाचित्र की विराट संदर्भशीलता उसे अन्य रेखाचित्रों से विशिष्ट और भिन्न बना देती है।

रेखाचित्र विधा के कलात्मक मानदंडों पर यदि आप ठकुरी बाबा को कसे तो पता चलेगा कि पात्रों के चेहरे, व्यक्तित्व, रूप-रंग, पहनावे, रहन-सहन, अंतरंग व्यक्तित्व आदि की झलकियाँ ठोस रूप में अंकित करने में महादेवी को पूरी सफलता मिली है। ठकुरी बाबा में यद्यपि केंद्रीय पात्र तो एक ही है, पर उसके व्यक्तित्व के बहु-आयामी पहलू को दर्शाने के लिए कल्पवास में उसके साथ आई हुई पूरी टोली के सामूहिक परिवेश का सटीक रेखांकन आवश्यक था। इसीलिए महादेवी ने आगंतुकों की टोली द्वारा बसेरा ग्रहण करने के बाद पर्णकुटी के अंदर और बाहर का नए सिरे से दृश्यांकन प्रस्तुत किया है - 'बरामदे की दूसरी ओर का जमघट कुछ विचित्र सा था। एक सूरदास समाधिस्थ जैसे बैठे थे। उनके मुख के चेचक के दाग, दृष्टि के जाने के मार्ग की ओर संकेत करते जान पड़ते थे। श्याम और दुर्बल शरीर में कंठ की उभरी नसों का तनाव बताता था कि वे अपनी विकलांगता का बदला कंठ से चुका लेना चाहते हैं। सिरकी की टट्टी बाँधते समय बाँस का एक कोना कुछ बढ़कर खूटी जैसा बन गया था, इसी से एक चिकारा और एक जोड़ा मंजीरा लटक रहा था। सामान में एक चादर, टाट और एक लुटिया भर थी, जिसके किनारे घिसते-घिसते टेढ़े-मेढ़े और पैने हो गए थे।' .

रेखाचित्र : ठकुरी बाबा (महादेवी वर्मा)

टिप्पणी

ठकुरी बाबा के अंधे दामाद का यह उपर्युक्त चित्र प्रस्थान बिंदु है अर्थात कलाकार के ब्रश का पहला स्पर्श मात्र है। इसके बाद टाट की सीमा से बाहर 'वीरासन से विराजमान और तिलकछाप से अपने पांडित्य की घोषणा करने वाले एक प्रौढ' ब्राह्मण पंडित का चित्र है। फिर स्त्रियों की मंडली का रेखांकन है - बड़ी सी गठरी के सहारे दो वृद्धाएँ सुमिरनी लिए ठंडी जमीन पर बैठी थीं जिनमें एक ऊँघ रही थी और दूसरी अपने आसपास बसी सृष्टि के प्रति आवश्यक चौकन्नी लगती थी। दो साँवली किशोरियाँ फटी दरी के टकडे पर सो रही काली कलूटी बालिका, चूल्हा खोदने में व्यस्त 'यामांगिनी युवती, अनेक छिद्रों वाली एक काली कंबली में सिकुड़े दो किशोर बालक आदि के सिलसिलेवार चित्र कल्पवास की पर्णकुटी के बदले हुए परिवेश का सजीव स्वरूप आपके सामने ले आते हैं। स्थान, काल, परिवेश, पात्र सबसे अच्छी तरह परिचित होने के बाद ही ठकुरी का व्यक्तित्व सामने आता है जो व्यक्तिपरक आख्यान जैसा आनंद देता है।

वस्तुतः यह घटना-बहुल, चरित्र-बहुल और समस्यामूलक रेखाचित्र है। व्यक्ति और परिवेश, दोनों के रेखांकन की कलात्मक विशेषता महादेवी के रेखाचित्रों को सजीवता प्रदान करती है। यह विशेषता ठकुरी बाबा में और भी गहरी हो गई है। .

3.7 सारांश

रेखाचित्र : ठकुरी बाबा नामक इस इकाई में आपने महादेवी वर्मा द्वारा लिखित रेखाचित्र 'ठकरी बाबा' का विश्लेषण और मूल्यांकन का अध्ययन किया है। ठकुरी बाबा एक रेखाचित्र है इसलिए यह बहुत ही जरूरी है कि आप यह जानें कि रेखाचित्र के रूप में ठकुरी बाबा की विशेषताएँ क्या हैं। उम्मीद है आपने इस दृष्टि से इकाई को समझ लिया होगा है।

ठकुरी बाबा महादेवी वर्मा के अन्य रेखाचित्रों से कई अथों में भिन्न है। इसमें ठकुरी बाबा और उनके संगी-साथियों का जो जीवन-चित्र प्रस्तुत किया है, उससे भारतीय ग्राम्य समाज के सबसे दरिद्र और उत्पीड़ित लोगों के जीवन की करुणा गाथा हमारे सामने उभर आई है। लेकिन लेखिका ने इसके माध्यम से उन सवालों को भी गहरी पीड़ा के साथ प्रस्तुत किया है जिसने उनके जीवन को कष्टमय बना रखा है। ठकुरी बाबा में महादेवी वर्मा ने रेखाचित्र के परंपरागत ढाँचे को तोड़ा है। भाषा की जो रचनात्मक शक्ति दिखाई देती है, वह इस बात का प्रमाण है कि महादेवी का गद्य कितना उत्कृष्ट है। एक ओर, संस्कृत-निष्ठ तत्सम शब्दावली और दूसरी ओर देशज तथा जनपदीय भाषा का प्रयोग ऐसे गद्य की सृष्टि करता है, जिसकी तुलना किसी अन्य लेखक की भाषा से नहीं की जा सकती।

ठकुरी बाबा का मूल्यांकन सिर्फ रेखाचित्र और उसकी कलात्मक उत्कर्षता के आधार पर करना पर्याप्त नहीं है। ठकरी बाबा के माध्यम से उन्होंने अपने समय और समाज. दोनों के गहरे अंतर्विरोधों को भी उजागर किया है। महादेवी की सहानुभूति समाज के पद-दलित और उत्पीडित लोगों के प्रति है। विशेषतः नारी समाज को जिस तरह की सामाजिक और मानसिक यातनाओं से गुजरना पड़ता है, उसका जैसा चित्र महादेवी प्रस्तुत करती है, वह अतुलनीय है। यह इकाई आपको ठकुरी बाबा की ऐसी सभी विशेषताओं को समझने का आधार प्रदान करती

3.8 अभ्यास प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. **रेखाचित्र की विशेषताओं के संदर्भ में ठकुरी बाबा का विश्लेषण और मूल्यांकन कीजिए।**

टिप्पणी

2. ठकुरी बाबा की चारित्रिक विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।
3. ठकुरी बाबा के माध्यम से महादेवी वर्मा ने किन-किन सामाजिक प्रश्नों को उठाया है? लेखिका के सामाजिक दृष्टिकोण को भी स्पष्ट कीजिए।
4. 'ठकुरी बाबा' की प्रस्तावना पर प्रकाश डालें।
5. रेखाचित्र के रूप में। ठकुरी बाबा पर वर्णन करें।

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. 'ठकुरी बाबा' में समाजिक चेतना पर प्रकाश डालें।
2. 'ठकुरी बाबा' के रेखाचित्र पर प्रकाश डालें।
3. 'ठकुरी बाबा' का मूल्यांकन कपने शब्दों में करें।
4. 'ठकुरी बाबा' का रेखाचित्र स्पष्ट रूप से समझाऐं।
5. महादेवी वर्मा का जीवन परिचय स्पष्ट रूप में बताऐं।

♦♦♦♦♦

इकाई 4

जीवनी : कलम का सिपाही (अमृतराय)

पाठ-संरचना

4.1 उद्देश्य
4.2 प्रस्तावना
4.3 जीवनी का स्वरूप
4.4 जीवनी साहित्य : परंपरा और विकास
4.5 कलम का सिपाही : जीवनी साहित्य की अन्यतम उपलब्धि
4.6 कलम का सिपाही : वस्तु और संवेदना
4.7 कलम का सिपाही : शिल्पगत वैशिष्टय
4.8 कलम का सिपाही का मूल्यांकन
4.9 सारांश
4.10 अभ्यास प्रश्न

4.1 उद्देश्य

यह इकाई छह भागों में विभक्त है। पहला भाग जीवनी के स्वरूप निर्धारण पर है। जीवनी विधा को किस तरह परिभाषित किया गया और जीवनी लेखन में कितने तत्वों का योग है- यह भाग इन्हीं तत्वों को रेखांकित करता है। जीवनी आधुनिक युग की देन होते हुए भी उसके प्रारंभिक बीज आदिकालीन साहित्य से ही मिलने लगते हैं। दूसरा भाग जीवनी की परंपरा और विकास को उद्घाटित करता है। तीसरे भाग में कलम का सिपाही जीवनी की विशेषताओं का परिचय दिया गया है। चौथा भाग आपके पाठ्यक्रम में निर्धारित अंश के संवेदनात्मक स्तरों पर केंद्रित है और पाँचवे भाग में उसके शिल्पगत वैशिष्टय को उभारा गया है। छठे भाग में प्रेमचंद पर लिखित अन्य जीवनियों का उल्लेख करते हुए इस कृति के वैशिष्टय का मूल्यांकन किया गया है। इकाई के अंत में इकाई का सारांश और अभ्यास दिए गए हैं। इकाई का अध्ययन करने से आपको सामान्य तौर पर जीवनी के लेखन और विशेष तौर पर कलम का सिपाही को समझने में मदद मिलेगी।

4.2 प्रस्तावना

इस इकाई का संबंध प्रेमचंद की जीवनी से है। यह जीवनी स्वयं प्रेमचंद के छोटे पुत्र अमृतराय ने लिखी है। प्रेमचंद का जन्म. 1880 ई. में हुआ था और 1936 ई. में उनका देहावसान हो गया था। अमृतराय उस समय छोटे थे। बाद में उन्होंने प्रेमचंद से संबंधित विभिन्न सामगी एकत्र की, उनके संपर्क में आने वाले सगे-संबंधियों, दोस्तों और परिचितों से मुलाकात की और खुद प्रेमचंद के साहित्य का सतर्कतापूर्वक अध्ययन किया। इस आधार सामग्री का इस्तेमाल कर अमृतराय ने कलम का सिपाही नाम से जो जीवनी लिखी, वह प्रेमचंद की सबसे प्रामाणिक, महत्वपूर्ण और पठनीय जीवनी है। अमृतराय प्रेमचंद के पुत्र थे। अपने पिता की जीवनी लिखना किसी भी पुत्र के लिए आसान नहीं होता। तब तो और भी मुश्किल होता है, जब पिता प्रेमचंद जैसा महान कथाकार हो। अमृतराय के बारे में यहाँ यह जानना जरूरी है कि वे स्वयं भी रचनाकार थे। कहानियों, उपन्यासों के साथ-साथ उन्होंने कई सालों तक 'हंस' पत्रिका का संपादन भी किया। वे महान लेखक के पुत्र ही नहीं थे। स्वयं उन्हें एक रचनाकार का हृदय और विचारक की दृष्टि मिली थी।

लेकिन महान् से महान् रचनाकार भी अंततः मनुष्य होता है। उसमें भी मनुष्य की स्वाभाविक कमजोरियाँ, इच्छाएँ और सीमाएँ होती हैं। लेकिन वह इन मानवीय स्थितियों से संघर्ष करता हुआ, समाज को कुछ ऐसा दे जाता है जो अपने समय के लिए ही नहीं आगे आने वाली कईकई पीढ़ियों के लिए मूल्यवान निधि होता है। उसकी इस कालजयी देन के वास्तविक महत्व को हम तभी समझ सकते हैं जब हम उस रचनाकार के जीवन संघर्ष के संदर्भ को समझने का प्रयास करें।

जीवनी का लेखन एक तरह से परकाया पवेश है। जीवनीकार जिस व्यक्ति के जीवन का विस्तृत वर्णन प्रस्तुत करता है, उसे वह तभी प्रभावी रूप दे सकता है जब वह उस व्यक्ति के जीवन के अंतर्विरोधों और मर्म को समझ सके। वह उसके द्वारा किए कार्यों के महत्व को पहचान सके। प्रेमचंद ने हिंदी कथा साहित्य को जिस रूप में समृद्ध किया है, वह युगांतरकारी कार्य है। लेकिन वह सिर्फ कथाकार ही नहीं थे। वे पत्रकार भी थे। 'हंस' और 'जागरण' के द्वारा उन्होंने स्वतंत्रता आंदोलन और नवजागरण को प्रगतिशील और जनोन्मुखी दिशा प्रदान की थी। लेकिन इन पत्र-पत्रिकाओं को प्रकाशित करने के लिए उन्हें लगातार मुश्किलों का सामना करना पड़ा था। मसिजीवी होने के कारण आय का अन्य कोई साधन न होते हुए भी पत्रों के प्रकाशन उनकी गहरी प्रतिबद्धता का सूचक था। कलम का सिपाही का जो अंश आपने पढ़ा है, उसका संबंध उनके पत्रकार के रूप में संघर्ष से संबंधित है।

टिप्पणी

प्रेमचंद ने कितनी मुश्किलों के बावजूद 'हंस' और 'जागरण' का प्रकाशन जारी रखा – यह अपने में एक मिसाल है।

प्रेमचंद की जीवनी के उतने ही अंश को पढ़ना पर्याप्त नहीं है जो आपके पाठ्यक्रम में है। हमारा सुझाव है कि आप कलम का सिपाही का आद्योपांत अध्ययन करें। यही नहीं, आपको प्रेमचंद से संबंधित अन्य पुस्तकों और उनके साहित्य को जरूर पढ़ना चाहिए। इस इकाई में आपको जीवनी साहित्य के स्वरूप और महत्व, कलम का सिपाही की विशेषताएँ और अन्य जीवनी-लेखन से उसकी तुलना को जानने का अवसर मिलेगा। लेकिन इतना अध्ययन ही आपके लिए पर्याप्त नहीं है। आप स्वयं पढ़कर जीवनी की विशेषताओं को समझने का प्रयास करें। इसके साथ ही आप यह भी पहचानने का प्रयास करें कि जीवनी और आत्मकथा, जीवनी और संस्मरण तथा जीवनी और रेखाचित्र में क्या बुनियादी अंतर है। आपने वसंत का अग्रदूत का अध्ययन किया है, क्या वह निराला की जीवनी है? क्या ठकुरी बाबा की जीवनी कहा जा सकता है? इन रचनाओं में ही इनकी विशिष्टताएँ निहित हैं जिनको जानना आपके लिए मुश्किल नहीं होगा।

4.3 जीवनी का स्वरूप

आधुनिक हिंदी गद्य के विकास में जिन विधाओं का विशेष योगदान रहा है, 'जीवनी' का उनमें महत्वपूर्ण स्थान है। मनुष्य-साहित्य और जीवन दोनों का केंद्र है। जीवनी उसके मनुष्य के दिखाई पड़ने वाले रूप को दिखाकर ही जीवनी लेखन कला संतुष्ट नहीं होती, वह उस आवरण को भेदकर अंत:स्वरूप और आंतरिक सत्य को प्रत्यक्ष करती है।'

इस दृष्टि से जीवनी को चरित-नायक के जीवन का मनोवैज्ञानिक अध्ययन भी कहा गया है जहाँ लेखक अपने चरितनायक के गुण-दोषमय चरित्र को एक तटस्थ एवं ईमानदार दष्टि से पहचानकर उसका सहृदयता, स्वतंत्रता एवं निष्पक्षतापूर्ण अंकन करता है। जीवनी लेखक अपने चरितनायक की जीवन यात्रा का सहयात्री बनता है। वह अपने चरित नायक को सतह की वास्तविकताओं से नहीं समझता, उसके जीवन की सच्चाइयों में गहरे पैठकर जीवन के उतारचढावों में सामाजिक संचरण करता हुआ अपने नायक के जीवन चरित्र को परत-दर-परत उघाड़कर प्रस्तुत करता है। न तो अतिरिक्त श्रद्धावश वह उसे केवल गुणों का पुतला बनाकर प्रस्तुत करता है न ही दुर्बलताओं का पुंज। जीवनी की सार्थकता इसी बात में निहित है कि उसके चरितनायक का स्वरूप एक जीते-जागते इंसान की तरह सप्राण हो।

जीवनी लेखन चरित-नायक के जीवन-तथ्यों पर आधारित होता है। उसे प्रामाणिक और विश्वसनीय बनाने के लिए लेखक को सामग्री संकलन के लिए भी भगीरथ प्रयास करना पड़ता है। एक शोधकर्ता की भांति वंह विभिन्न सामग्री स्रोतों का संकलन एवं अध्ययन-मनन करता है। यदि चरित-नायक द्वारा आत्मकथा लिखी गई हो तो वह जीवनी लेखक के लिए भी प्रमुख स्रोत बनती है। इसके साथ-साथ स्वयं नायक द्वारा लिखे गए संस्मरण या अन्य लोगों द्वारा नायक के विषय में लिखे संस्मरण, नायक की डायरी, पत्र, चरित-नायक द्वारा लिखा गया सर्जनात्मक एवं आलोचनात्मक साहित्य उसकी वक्तृताएँ, भेटवार्ताएँ, पेंटिंग, फोटोग्राफ इत्यादि विभिन्न सामग्री जिसका संबध किसी न किसी रूप में चरित-नायक से हो- वह सब जीवनीकार के लिए महत्वपूर्ण होता है। इसके अतिरिक्त, वह स्वयं उन लोगों से मिलता है जो चरित-नायक के घनिष्ठ रहे हों। अपने चरित-नायक के युग और पृष्ठभूमि को समझने के लिए लेखक तत्कालीन समाचार-पत्रों, इतिहास-ग्रंथों आदि में बिखरी सामग्री का भी संचयन कर, उसपर चिंतन करता है और तभी एक सफल जीवनी का निर्माण संभव होता है।

तथ्य-संकलन की इतनी महत्ता के बावजूद अनुभूति और कल्पना के अभाव में जीवनी साहित्य विधा न होकर निष्प्राण इतिहास-ग्रंथ के समान हो जाती है। यदि जीवन-तथ्य जीवनी का कलेवर है तो अनुभूति और कल्पना उसमें प्राण-संचार करने वाला तत्व है लेकिन कल्पना का प्रयोग केवल कलात्मक विन्यास के सहायक तत्व के रूप में ही किया जाता है। ;; जीवनीकार का लक्ष्य व्यक्ति को उसके संपूर्ण संदर्भों में प्रस्तुत करने का रहता है, इसलिए व्यक्ति के भावलोक एवं विचार-क्षेत्र के साथ-साथ उसका बहिर्जगत भी जीवनीकार के लिए महत्वपूर्ण है। वस्तुत: व्यक्ति को गढ़ने में उसकी परिस्थितियों और सामाजिक शक्तियों का अद्वितीय योगदान है। जीवनीकार के लिए व्यक्ति-जीवन की घटनाएँ मात्र सत्य नहीं है, घटनाओं की पृष्ठभूमि, उनको निर्धारित करने वाले प्रेरणा स्रोत अधिक महत्वपूर्ण हैं। इस दष्टि से लेखक तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक परिप्रेक्ष्य को खंगालता है और उन सक्रिय शक्तियों की पहचान करता है जो उसके चरित-नायक के जीवन का नियमन करती रहीं या फिर चरित-नायक ने जिस रूप में सामाजिक-राजनीतिक परिवर्तन लाने में अपनी भूमिका निभाई।

इस प्रकार, जीवनी एक गुम्फित विधा है जिसके केंद्र में व्यक्ति और उसका अंतर बाह्य जगत है। दूसरी ओर, उस व्यक्ति के माध्यम से ही पूरा युग और पृष्ठभूमि भी ध्वनित होती है। कुल मिलाकर, जीवनी लेखन एक चुनौतीपूर्ण विधा है जो लेखक से विशिष्ट रचनात्मक प्रतिभा की अपेक्षा रखती है।

4.4 जीवनी साहित्य : परंपरा और विकास

आधुनिक गद्य विधा के रूप में जीवनी निश्चित रूप से आधुनिक युग की ही देन है। यों परंपरागत दृष्टि से देखा जाए तो साहित्य के आरंभिक युग से ही जीवन-चरितों के सृजन की परंपरा उपलब्ध रही है। आदिकाल के चरित-काव्य काव्य-नायक के जीवन-चरित की ही कहानी हुआ करते थे, किंतु वहाँ तथ्यगत सच्चाई की अपेक्षा कवि-कल्पना की प्रधानता रहती थी। आदिकालीन वीर काव्य राजा-महाराजाओं के शौर्य और ऐश्वर्य की ऐसी गाथाएँ थीं जिनमें वीरता और श्रृंगारिकता के अतिरंजित चित्र उपलब्ध होते थे। भक्तिकाल में भी भक्तों के जीवनादर्शों की प्रस्तुति के लिए चरित लेखन की परंपरा को विशेष प्रोत्साहन मिला। एक ओर जहाँ संतों के जीवन चरित पर आधारित 'परचई' साहित्य लिखा गया जैसे 'कबीर जी की परचई', 'नामदेव जी की परचई', 'रेदास जी की परचई', 'मलूकदास जी की परचई' आदि। दूसरी ओर नाभादास कृत 'भक्तमाल', स्वामी गोकुलनाथ कृत 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता, 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' तथा 'अष्टसखान की वार्ता' जैसे ग्रंथ जनता के बीच विशेष रूप से विख्यात रहे। इन सभी रचनाओं में तथ्यात्मकता का अभाव रहा। भक्तों के प्रति आदर और प्रशंसा की अभिव्यक्ति के उद्देश्य से रचे गए ये ग्रंथ कहीं-कहीं अलौकिकता का पट लिए हुए हैं।

भारतेंदु युग में ही अन्य गद्य विधाओं की भांति जीवनी के भी सृजन और विकास का पथ प्रशस्त हुआ। राष्ट्रीय आंदोलन की पृष्ठभूमि में भारतेंदु युग में मुख्यत: संत महात्माओं, राजामहाराजाओं. विदेशी शासकों. समकालीन राष्टीय नेताओं. देशभक्त क्रांतिकारी युवाओं एवं साहित्यकारों के जीवन चरित लिखे गए। स्वयं भारतेंदु ने 'चरितावली' (1871-1889) की रचना की जिसमें अनेक महत्वपूर्ण व्यक्तियों के संक्षिप्त जीवन चरित संकलित हैं। 'पंच पवित्रात्मा' (1884) शीर्षक से उन्होंने मुस्लिम धमाचार्यों की भी संक्षिप्त जीवनियाँ लिखीं। इस युग की अधिकांश जीवनियों में किंवदंतियों को आधार बनाया गया। प्राय: वर्णन और विवरण ही प्रधान रहे। फिर भी भारतेंदु, मुंशी देवी प्रसाद और कार्तिक प्रसाद खत्री ने अपने चरित नायक की विशिष्टताओं को उभारने का प्रयास किया। इनके द्वारा रचित जीवन चरितों में प्रामाणि कता और रोचकता के गुणों का भी निर्वाह हुआ।

टिप्पणी

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने जीवन चरित संबंधी पाँच पुस्तकों की रचना की जिनमें 'प्राचीन पंडित और कवि', 'सुकवि संकीर्तन' तथा 'चरित चर्चा' आदि उल्लेखनीय हैं।

प्रेमचंद के जीवन पर केंद्रित शिवरानी देवी की रचना 'प्रेमचंद : घर मे।' (1944) संस्मरणात्मक शैली में लिखी गई जीवनी है। इस प्रकार स्वाधीनता-पूर्व युग में यद्यपि जीवनी के कोई स्थिर मानदंड नहीं थे। एक विकासात्मक विधा के रूप में उसमें अनेक तत्वों और भाषागत विभिन्न शैलियों का प्रयोग होता रहा। वस्तुपरक तटस्थता की अपेक्षा श्रद्धापरक दृष्टि ही प्रधान रही लेकिन इन सबके बावजूद विषयगत वैविध्य इस युग के जीवनी लेखन की प्रधान प्रवृत्ति रहा। अपने चरित नायक के चुनाव में लेखकों ने व्यापक दृष्टिकोण का परिचय दिया।

स्वातंत्रोत्तर युग जीवनी विधा का उत्कर्ष काल कहा जा सकता है। विषय-वस्तु और अभिव्यक्ति, दोनों दृष्टियों से इस युग में विकास की नई संभावनाएँ सामने आई। संक्षिप्त जीवन-चरितों के सजन की अपेक्षा लेखकों की प्रवत्ति व्यक्ति को उसके व्यापक यग संदर्भो से जोड़कर देखने की रही। स्वातंत्रोत्तर यग में साहित्यकारों का जीवन के कठोर यथार्थ से सीधा साक्षात्कार हुआ। फलत: जीवनीकार का भी अपने चरित-नायक के प्रति अंध-भक्तिपरक दृष्टिकोण परिवर्तित हो गया। अब जीवनी चरित-नायक का प्रशस्तिपरक चित्र न होकर अपने व्यक्तित्व का गुण-दोषपूर्ण चित्रण होने लगी। इसी परिवर्तित दृष्टिकोण ने जीवनी के स्वरूप को प्रामाणिकता एवं विश्वसनीयता प्रदान की। अब जीवनी के चरित-नायक अति-मानवीय चरित्र न होकर हाड़-मांस युक्त ऐसे व्यक्ति के रूप में प्रस्तुत हुए, जीवनगत संघषों के बीच जिसका जीवन मानवं मात्र के लिए प्रेरणा का स्रोत बन जाता है। स्वातंत्रोत्तर युग में भी जीवनी के चरित-नायकों का चुनाव जीवन के विविध क्षेत्रों से किया जाता रहा। धर्म, समाज, राजनीति, साहित्य- इन सभी क्षेत्रों से संबद्ध विशिष्ट व्यक्ति जीवनीकारों के लिए आकर्षण का केंद्र बने रहे और इस युग की कुछ महत्वपूर्ण जीवनियाँ इन्हीं के जीवन को केंद्र में रखकर लिखी गई।

राजनीतिक क्षेत्र से संबंधित व्यक्तियों पर जीवनी लिखने वाले साहित्यकारों में पंडित राहुल सांकृत्यायन का नाम विशेष सम्मान का अधिकारी है। साम्यवादी विचारधारा को उसके पूर्ण परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करने तथा उसके नेताओं के प्रति आस्था उत्पन्न करने के उद्देश्य से उन्होंने 1953 में 'स्तालिन', 1954 में 'कार्ल मार्क्स' तथा 'लेनिन' और 1956 में 'माओ त्से तुंग' की जीवनियाँ लिखीं।

इस श्रेणी में रामवक्ष बेनीपरी द्वारा लिखित 'कार्ल मार्क्स' तथा जयप्रकाश नारायण की जीवनियों का भी अपना महत्व है। समकालीन राजनीतिक नेताओं के जीवन को केंद्र में रखकर जो जीवनियाँ लिखी गई उनमें ओंकार शरद द्वारा लिखित 'राममनोहर लोहिया' (1971) इस युग में प्रमुख रही है।

गद्य की आधुनिक विधा के रूप में जहाँ 'जीवनी' अपने पूर्ण उत्कर्ष पर दिखाई देती है वह है अपने समय के प्रसिद्ध साहित्यकारों पर लिखी गईं जीवनियाँ जो एक लेखक के व्यक्तित्व, उसके युग तथा उसकी रचना-प्रक्रिया को समझने में सहायक रही है। इस दृष्टि से पत्रकार ऋषि जैमिनी, कौशिक 'बारुआ' द्वारा लिखित श्माखनलाल चतुर्वेदीश (1960) की जीवनी, प्रेमचंद के जीवन पर केंद्रित उनके पुत्र अमृतराय द्वारा लिखित 'कलम का सिपाही' (1962), डॉ. रामविलास शर्मा द्वारा रचित 'निराला की साहित्य साधना' का प्रथम खंड (1969) तथा सुप्रसिद्ध साहित्यकार शरतचंद्र के जीवन पर आधारित विष्णु प्रभाकर द्वारा लिखी गई जीवनी 'आवारा मसीहा' विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं।

इस प्रकार, कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि जीवनी लेखन के जो बीज हिंदी साहित्य के आरंभिक काल में दिखाई पड़े थे आधुनिक काल में पूर्णत: पल्लवित एवं विकसित हए हैं। आधुनिक काल

जीवनी : कलम का सिपाही (अमृतराय)

टिप्पणी

में जीवनी गद्य साहित्य की एक शक्त विधा बनकर उभरी है। न केवल परिमाण की दृष्टि से बल्कि वैविध्य एवं गुणवत्ता की दृष्टि से भी उसका उत्तरोत्तर विकास हो गया है।

4.5 कलम का सिपाही : जीवनी साहित्य की अन्यतम उपलब्धि

अमृतराय द्वारा लिखित प्रेमचंद : कलम का सिपाही जीवनी विधा की परिपक्वता की पहचान है और हिंदी साहित्य की एक अन्यतम उपलब्धि भी। प्रेमचंद केवल एक व्यक्ति-विशेष नहीं है, वे एक समूचे युग के प्रणेता हैं। उनका सर्जनात्मक व्यक्तित्व जीवन और साहित्य की खाई को पाटने वाला अथक प्रयास है। प्रेमचंद के अनुसार साहित्य की सार्थकता उसके मानव समाज से जुड़े रहने में ही है। साहित्य और समाज का दिशा-निर्देश करने वाले प्रेमचंद का जीवन अतिसाधारण होते हुए भी अपने युग के अंतर्विरोधों का प्रतिबिंब है। अमृतराय ने उनके जीवन के इसी रूप को साकार किया है। प्रेमचंद का जीवन औसत भारतीय जन जैसा है। यह साधारणत्व एवं सहजता प्रेमचंद की विशेषता है। उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है - 'मेरा जीवन सपाट समतल मैदान है, जिसमें कहीं-कहीं गढ़े तो हैं पर टीलों, पर्वतों, घने जंगलों, गहरी घाटियों और खंडहरों का स्थान नहीं है। जो सज्जन पहाड़ों की सैर के शौकीन है उन्हें तो यहाँ निराशा ही होंगी।' (भूमिका, कलम का सिपाही, पृ.4)

प्रेमचंद की यह सहजता यत्न-साधित या एक लेखक की ओढ़ी हुई विशिष्ट मुद्रा नहीं है। अमृतराय कहते हैं- 'प्रेमचंद की सरलता सहज है।.... नहीं, वह कस्तूरी मृग नहीं है जिसे अपने भीतर की कस्तूरी का पता नहीं। उसे पता है कि उसके भीतर ऐसा भी कुछ है जो मूल्यवान है, उसका अपना है, नितांत अपना, मौलिक, विशेष वही उसका मोती है, मानिक है।' (भूमिका, कलम का सिपाही, पृ.2)

प्रेमचंद की सरलता, सहज होते हुए भी जटिल है। वह इकहरी नहीं है - केवल उस व्यक्ति तक सीमित नहीं है। वस्तुत: प्रेमचंद का 'स्व', 'सर्व' से जुड़े बिना परिभाषित किया ही नहीं जा सकता। प्रेमचंद की चेतना भारतीय पुनर्जागरण के दौर में विकसित हुई है। राजनीतिक दृष्टि से यह गहरी उथल-पुथल और मानसिक ऊहापोह का युग था। अमृतराय ने इसीलिए कांग्रेस के इतिहास के लंबे विवरण दिए हैं और प्रेमचंद का युवा-मानस किस तरह उन सबसे प्रभावित होता है लेखक ने इसका उचित रेखांकन किया है। आरंभ में प्रेमचंद गोखले से प्रभावित होते हैं और बाद में तिलक का व्यक्तित्व उन्हें अधिक आकर्षित करता है। लेखक की दृष्टि में इन दोनों का समंजन गांधी जी की नैतिक सुधारपरक चेतना में मिलता है जो एक लंबे समय तक प्रेमचंद के व्यक्तित्व और कृतित्व पर हावी रहा।

चरित-लेखक अमृतराय ने अपने चरित-नायक प्रेमचंद के वैचारिक और भावात्मक विकास को तत्कालीन परिवेश के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया है। अत: उनके व्यक्तित्व में उस युग-यथार्थ की जटिलतर अभिव्यक्ति संभव हुई है। कलम का सिपाही की भूमिका में अमृतराय ने प्रेमचंद की विचारधारा को वाणी देते हुए लिखा है : 'मैं तो नदी किनारे खड़ा हुआ नरकुल हूँ, हवा के थपेड़ों से मेरे अंदर भी आवाज पैदा हो जाती है। बस इतनी-सी बात है। मेरे पास अपना कुछ नहीं है, जो कुछ है इन हवाओं का है जो मेरे भीतर बजीं।' (भूमिका - कलम का सिपाही, पृ.4)

अमृतराय ने इन्हीं हवाओं को पकड़ने की कोशिश की है। स्वातंत्र्य-पूर्व युग में प्रेमचंद ऐसे व्यक्ति हैं जिनकी राष्ट्रीय-सामाजिक परिवर्तन लाने में एक सक्रिय भूमिका रही है। प्रेमचंद का रचनात्मक साहित्य, संपादकीय टिप्पणियाँ और उनके पत्र आदि इस सत्य के साक्षी हैं।

प्रेमचंद के जीवन-चरित को उभारने में एक ओर यदि लेखक ने युग की विस्तृत पृष्ठभूमि को लिया है तो दूसरी ओर छोटे-छोटे पारिवारिक प्रसंगों का संयोजन हैं जिनमें प्रेमचंद के मानसिक द्वंद्व और

टिप्पणी

आर्थिक परेशानियों की अभिव्यक्ति हुई है। अमृतराय ने प्रेमचंद का पुत्र होते हुए भी जीवनी लेखन के लिए पूर्ण तटस्थता का निर्वाह किया है। डॉ. बच्चन सिंह के शब्दों में – 'जब पुत्र पिता की जीवनी लिख रहा हो तो यह काम और भी जोखिम का हो जाता है, लेकिन कुल मिलाकर अमृतराय ने जिस तटस्थता का परिचय दिया है वह 'लाघ्य है' (डॉ. बच्चन सिंह – कलम का सिपाही : एक युग का संदर्भ; संपा. मन्मथनाथ गुप्त – समसामयिक हिंदी साहित्य, पृ.193)

प्रेमचंद की कहानियों और उनके जीवन संदर्भो पर लेखक की ऐसी अनेक टिप्पणियाँ हैं जो प्रेमचंद की कमजोरियों और उनकी सीमाओं को भी प्रत्यक्ष करती हैं। पुत्री को उच्च शिक्षा न दिला सकने के प्रसंग में अमृतराय ने यहाँ तक कहा है कि अन्य मजबूरियों के साथ मुंशी जी के मन की वह मजबूरी भी रही होगी जो स्त्री की नयी शिक्षा के प्रति कुछ संशयग्रस्त थी। जैसे 'राम की शक्ति पूजा' में निराला राम के उस मन की बात करते हैं जो कभी नहीं थकता – 'एक और मन रहा राम का जो न थका' उसी तरह प्रेमचंद भी यहाँ गहरे मानसिक द्वंद्व और अंत: संघर्ष से दिखाई पड़ते हैं। एक ओर तो ऊपर से देखने पर प्रेमचंद का समाज-भीरू व्यक्तित्व है और दूसरी ओर समाज में परिवर्तन लाने वाली प्रगतिशील शक्तियों के हाथ मजबूत करने के लिए उनकी कलम बराबर चलती रही। लेकिन प्रेमचंद की यह जीवन-यात्रा अत्यंत कठिन है। जीवन के अंत में मृत्यु-शैय्या पर पड़े प्रेमचंद का जैनेन्द्र से यह कहना कि 'अब आदर्श से काम नहीं चलेगा।' कहीं उनकी आशाओं और दृढ़ विश्वासों के स्खलन का सूचक है। प्रेमचंद के मन की इसी पीड़ा को अमृतराय ने बखूबी शब्दबद्ध किया है। इसीलिए प्रेमचंद की यह जीवनी मात्र उनके जीवन की घटनाओं का ब्यौरा भर नहीं है बल्कि उनके जीवन का ऐसा पुन: सृजन है जहाँ पाठक भी अपने युग के इतने बड़े साहित्यिक की जीवनयात्रा का सहयात्री बन जाता है। प्रेमचंद को पूर्णत: समझने के लिए उनकी यह जीवनी एक सार्थक सोपान है।

प्रेमचंद ने स्वयं कोई आत्मकथा नहीं लिखी, न ही अपने विषय में कोई लेख लिखा और न ही वे डायरी लिखा करते थे। यहाँ तक कि अपने पत्रों को भी संभाल कर नहीं रखते थे। इससे जीवनी लेखक का काम और भी कठिन हो गया। सामग्री संकलन के लिए उन्हें विशेष प्रयास करने पड़े हैं। लेखक ने जहाँ से हो सका उनके पत्रों को इकट्ठा किया, उनपर लिखे गए संस्मरणों का आश्रय लिया और साथ ही उनके रचनात्मक साहित्य के पात्रों में भी प्रेमचंद के जीवन-प्रसंगों को ढूंढा है। यहाँ एक खतरा पैदा हो जाता है। कथा-साहित्य के पात्रों की प्रेरणा स्वानुभूत जीवन-प्रसंगों की हो सकती है लेकिन उनके सृजन में लेखक की कल्पना का भी बहुत बड़ा योगदान रहता है। अत: पात्रों के जीवन में प्रेमचंद के जीवन को तलाशना बहुत उचित नहीं है। इसी तरह, संस्मरणों के प्रयोग में भी अतिरिक्त सावधानी की अपेक्षा रहती है क्योंकि संस्मरण लेखक का 'स्व' या उसके श्रद्धापरक दृष्टिकोण ही अपने चरित-नायक के व्यक्तित्व को उभारने में अधिक क्रियाशील रहता है। जीवनी के अंत में, अमृतराय ने प्रेमचंद के अंतिम दिनों का वर्णन किया है और उसमें उनपर लिखे गए संस्मरणों का बहुत प्रयोग हआ है। ये संस्मरण मार्मिक होते हुए भी भावाविष्ट हैं, इस सत्य को नकारा नहीं जा सकता।

जहाँ तक उनके पत्रों का प्रश्न है, तो उसमें उनके व्यक्तित्व के अनेक पक्ष उभरे हैं – सुख-दु:ख, आशा-आकांक्षाएँ, आर्थिक तंगहाली, वैचारिक संघर्ष आदि।

कुल मिलाकर, इन सभी स्रोतों से संकलित सामग्री के आधार पर अमृतराय ने प्रेमचंद जीवनी : कलम का सिपाही के जीवन को जिस समग्रता से प्रस्तुत किया है वह रोचक भी है और आकर्षक भी। इस (अमृतराय) सबमें अमृतराय की भाषा का भी बहुत बड़ा योगदान है। भाषा पर उनका पूर्ण अधि कार है। और शब्दों के वे धनी हैं। अत: भाषा की सजीवता एवं सशक्तता ने इस जीवनी को और भी महत्वपूर्ण बना दिया है।

4.6 कलम का सिपाही : वस्तु और संवेदना

जीवनी विधा की दृष्टि से कलम का सिपाही की अद्वितीयता स्वत:सिद्ध है, जिस रूप में यह जीवनी प्रेमचंद जैसे साहित्य-सेवी के जीवन-संघर्ष और उनकी विचारधारा को प्रस्तुत करती है वह अपने आप में इस विधा की प्रभविष्णुता का प्रमाण है। प्रस्तुत अंश जीवनी के अध्याय 32 में से है। यह इस जीवनी की प्रातिनिधिक झलक है। इस अध्याय में प्रेमचंद का जो चित्र उपस्थित हुआ है उसमें उनके व्यक्तित्व के सभी रंग दिखाई पड़ते हैं। परिवार के छोटे-छोटे सुख-दु:खों में फंसे साधारण व्यक्ति-जीवन से लेकर राष्ट्रीय-सामाजिक और साहित्यिक मसलों पर गंभीरता से विचार करने वाले बुद्धिजीवी-जीवन तक प्रेमचंद का जीवन फैला हुआ था। प्रस्तुत अध्याय संपूर्ण जीवनी के संदर्भ में उसे उभारने में सक्षम है।

अध्याय के प्रारंभिक अंशों में प्रेमचंद के गार्हस्थिक जीवन की झलक प्रस्तुत की गई है। लेखन कार्य में तल्लीन प्रेमचंद को परिवार के सदस्यों का बार-बार आकर पुकारना और अंत में पत्नी शिवरानी देवी का स्वयं आकर कलम छुड़ाना और जबरदस्ती भोजन के लिए ले जाना, बच्चों का पिता के साथ ही भोजन करने की प्रतीक्षा में सो जाना और फिर सबका एक-साथ बैठकर रात का भोजन करना - इन सब प्रसंगों द्वारा अमृतराय ने प्रेमचंद के पारिवारिक जीवन, उनके सहज व्यक्तित्व तथा परस्पर आत्मीयता की सुंदर संक्षिप्त झलक प्रस्तुत की है। कहीं पर स्वयं जी तोड़कर मेहनत करने वाले प्रेमचंद अपने बच्चों को सदैव खेलने-कूदने की नसीहत देते प्रस्तुत हुए हैं तो कहीं बीमार बेटी के स्वास्थ्य की चिंता में विचार-मग्न।

प्रेमचंद का साहित्यिक व्यक्तित्व भले ही समृद्धि के शिखर पर रहा हो लेकिन व्यक्तिगत जीवन में वे सदैव अभावों और तकलीफों से घिरे रहे। अपने मित्रों को लिखे पत्रों में प्रेमचंद ने बारबार अपनी स्थितियों का उल्लेख किया है। प्रस्तुत अध्याय में उन पत्रों के कुछ अंश अमृतराय ने उद्धृत किए हैं, जिनमें प्रेमचंद के संघर्षरत जीवन की व्यथा-कथा झलकती है :

'मैं तो इधर बहुत परेशान रहा।... बेटी के पुत्र हुआ और उसे प्रसूत ज्वर ने पकड़ लिया, मरते-मरते बची ...। ... मैं अकेला रह गया था। बीमार पड़ा, दाँतों ने कष्ट दिया .... बुढ़ापा स्वयं रोग है और अब मुझे उसने स्वीकार करा दिया कि अब मैं उसके पंजे में आ गया हूँ।श

किंतु बुढ़ापे का यह अहसास, अस्वस्थता और बेचारगी, प्रेमचंद के व्यक्तित्व पर कभी हावी नहीं रहे, भले ही शारीरिक स्तर पर उन्होंने इसकी पीड़ा को भोगा हो। अमृतराय ने बहुत सुंदर सटीक शब्दों में प्रेमचंद के जीवट का परिचय दिया है :

'बुढ़ापा वह है जब चित्त बुड्ढा हो जाता है और आदमी केवल साँस के आने-जाने को जिन्दगी समझने लगता है। जब निष्ठा के पैर डगमगाने लगते हैं और तरुणाई के आदर्श संकल्प सदा झूठे जान पड़ते हैं। जब अन्याय देखकर आँखों में खून नहीं उतरता, बुढ़ापा वह है। यहाँ तो अभी वैसी कोई बात नहीं है।'

वस्तुत: प्रेमचंद के व्यक्तित्व में जो उत्कट जिजीविषा और जीवंतता है वही इस अध्याय में प्रमुख रूप से उभरी है। सामाजिक अन्याय के विरुद्ध लड़ता हुआ, साम्प्रदायिक सद्भाव के प्रति सचेत, साहित्यिक मसलों पर निडर और दो-टूक बात करने वाला 'प्रेमचंद का जुझारू रूप अनेक घटनाओं के माध्यम से उभरकर सामने आया है। जैसा कि अमतराय ने टिप्पणी की है -'.... कोई भी बात हो, छोटी हो बड़ा हो, अपनी हो पराई हो, जहाँ भी कोई अन्याय हो रहा हो, मुंशीजी जूझने के लिए तैयार हैं।'

'राष्ट्रीय एकता और साम्प्रदायिक सद्भाव के प्रति मुंशी जी सदा जागरूक दिखते हैं। हजरत मुहम्मद की पुण्य-तिथि पर हुए जलसे और उसमें पंडित सुंदरलाल की दी हुई स्पीच को वे अपनी पत्रिका में

टिप्पणी

महत्वपूर्ण स्थान देते हैं। जबकि दोनों सम्प्रदायों के बीच विद्वेष बढ़ाने वाले हर व्यक्ति को वे आड़े हाथों लेते हैं फिर चाहे वह कोई प्रसिद्ध लेखक ही क्यों न हो :

'इन चतुरसेन को क्या हो गया कि 'इस्लाम का विषवृक्ष' लिख डाला? उसकी एक आलोचना तुम लिखो और वह पुस्तक मेरे पास भेजो... इस कम्युनल प्रोपेगण्डा का जोरों से मुकाबला करना होगा... (कलम का सिपाही, पृ.495)

प्रेमचंद के भीतर एक बेचौनी है परिवर्तन की। समाज की प्रत्येक गतिविधि पर उनकी राय है और जहाँ भी, जो कुछ भी विकास के मार्ग को अवरुद्ध करने वाला है उससे डटकर लोहा लेना, अपनी कलम की ताकत से उसके समस्त छिद्रों का उद्‌घाटन कर अपना विरोध प्रकट करना, प्रेमचंद की शख्सियत का हिस्सा है। चाहे परंपरागत हिंदू समाज में कोढ़ की भांति फैली कुरीतियों और पुरोहित वर्ग के शोषण की बात हो, चाहे आधुनिक समाज में पूँजीवादी की। स्वार्थ नीति का विषय हो। प्रेमचंद इन ह्रासशील और समाज का अहित करने वाले विशिष्ट वगी का खुलकर विरोध करते दिखते हैं।

ब्राह्मणत्व प्रेमचंद की दृष्टि में एक विशिष्ट पदवी है जिसे कोई भी व्यक्ति सेवा और त्याग के द्वारा ही प्राप्त कर सकता है लेकिन हिंदू समाज में ब्राह्मणत्व के नाम पर जिस प्रकार पण्डे और पुरोहित अपना स्वार्थ सिद्ध करते हैं और भोली-भाली जनता को धार्मिक आडम्बरों और अंधविश्वासों में जकड़कर रख देते हैं, उस प्रवृत्ति का प्रेमचंद खुलकर विरोध करते हैं। उनके कथा-साहित्य में इसी तथाकथित ब्राह्मण वर्ग के विरुद्ध उठाई गई आवाज को लक्षित कर उन्हें घृणा का प्रचारक तथा ब्राह्मण विरोधी भी कहा गया। इस आक्षेप का उत्तर प्रेमचंद बड़ी सधी हुई भाषा में देते हैं। इस विषय में उनकी स्पष्ट राय है कि - 'इन पुजारियों और पंडों को मैं हिंदू जाति का अभिशाप समझता हूँ, वही हमारे पतन का कारण हैं।'

प्रेमचंद हिंदू जाति को पुरोहितों, पुजारियों, पंडों और धर्मोपजीवी कीटाणुओं से, मुक्त कराने के अभिलाषी हैं। वे मानते हैं कि हिंदू जाति का सबसे घृणित कोढ़, सबसे लज्जाजनक कलंक यही टकेपंथी दल है जो एक विशाल जोंक की भांति उसका खून चूस रहा है।

पूँजीवादी अर्थ-नैतिक विडम्बना पर भी मुंशीजी के विचार स्पष्ट रूप से इस अध्याय में उभरकर आए हैं। उनवे अनुसार, वर्तमान समय में सामाजिक विसंगतियों की जड़ यही वर्ग है। पूँजीवादी चाहे वह किसी भी देश या जाति का हो, मुंशी जी उसे एक ही प्रवृत्ति का मानते हैं और संसार में आई हुई हर तबाही का कारण पूँजीपति को ही मानते हैं : 'यह साम्राज्यवाद की विपत्ति जिससे संसार त्राहि-त्राहि कर रहा है, यह किसकी बुलाई हुई है? इन्हीं कुबेर के गुलामों की। ... यह जो बड़ी-बड़ी लड़ाइयाँ होती हैं जिनमें खून की नदियाँ बह जाती हैं इसका जिम्मेदार कौन है? यही लक्ष्मी के उपासक।'

इसलिए वे मानते हैं कि जब तक सम्पत्ति पर व्यक्तिगत अधिकार रहेगा, तब तक मानव समाज का उद्धार नहीं हो सकता। पुरोहितवाद की ही तरह, इस पूँजीवाद के प्रति भी प्रेमचंद की लेखनी में असंतोष और आक्रोश के तीखे स्वर हैं :

यह आशा करना कि पूँजीपति किसानों की दीन दशा से लाभ उठाना छोड़ देंगे, कुत्ते । से चमड़े की रखवाली करने की आशा करना है। इस खूखार जानवर से अपनी रक्षा करने के लिए हमें स्वयं सशस्त्र होना पड़ेगा। प्रेमचंद का जीवन और उनका बहु-आयामी व्यक्तित्व हर मोर्चे पर कमर कसे दिखाई देता है। राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय हर महत्वपूर्ण मसले पर उनका गंभीर चिंतन उनके सरोकारों का स्पष्ट उदाहरण है, चाहे सीमा प्रदेश में हो रही बमबारी हो या पुलिस के अमानवीय कृत्य, कोर्ट-कचहरी की लचर व्यवस्था हो या जेलों की स्थिति। मुंशी जी की लेखनी हर मसले पर उठती है, एक अन्य घटना जिसका संबंध तत्कालीन साहित्यिक माहौल से है, प्रस्तुत अध्याय में विस्तार से वर्णित की गई है। ठाकुर श्रीनाथ

टिप्पणी

सिंह ने बनारसीदास का इंटरव्यू लेकर उसमें अपनी तरफ से नमक-मिर्च लगाकर पत्रिका में छाप दिया, मुंशी जी इस मसले पर भी चुप नहीं रहे और 'साहित्यिक गुंडापन' शीर्षक से 'हंस' में इस मामले की चर्चा करते हुए कूद पड़े और बनारसीदास जी की ओर से जोरदार पैरवी कर डाली। इस प्रसंग से जहाँ प्रेमचंद की सहृदयता, निर्भीकता और बेलाग बात करने की प्रवृत्ति पर प्रकाश पड़ता है वहीं तत्कालीन पत्रपत्रिकाओं की साधनहीनता और उनकी दयनीय स्थिति का भी संकेत मिलता है : 'इस होड़ युग में अन्य व्यवसायों की भांति पत्र-पत्रिकाओं को अपने स्वामियों या संचालकों को नफा देने या अपना अस्तित्व बनाए रखने के लिए तरह-तरह की चालें चलनी पड़ती हैं. स्वामी नफा चाहता है और नफा न हुआ तो बेचारे संपादक की जान की कुशल नहीं।'

लेखक संघ की स्थापना के प्रश्न पर भी प्रेमचंद के विचार प्रस्तुत अध्याय में प्रकाशित हुए हैं। प्रेमचंद जी स्वयं एक भुक्तभोगी लेखक रहे, लेकिन लेखकों के अधिकारों और हितों क लिए बने लेखक संघ के प्रस्ताव को उन्होंने अधिक तवज्जो नहीं दी। वस्तुत: लेखक संघ को लेखकों के ट्रेड यूनियन के रूप में गठित करना- जिसका अकेला काम प्रकाशकों के साथ टक्कर लेना हो, उन्हें स्वीकार नहीं। इस संदर्भ में प्रेमचंद द्वारा की गई टिप्पणी के पीछे उनकी विवेकपूर्ण दृष्टि का आधार रहा है :

लत ऐसी नहीं कि प्रकाशकों को लेखकों के साथ ज्यादा न्यायसंगत व्यवहार करने पर मजबूर किया जा सके... इस समय एक भी ऐसा साहित्य ग्रंथ प्रकाशक नहीं है जो नफे से काम कर रहा हो... वे प्राय: बड़ी मुश्किल से अपनी लागत निकाल पाते हैं।श

यद्यपि कलम का सिपाही के इस विवेच्य अध्याय में प्रेमचंद का जुझारू व्यक्तित्व ही उभरकर सामने आता है, जो हर कठिनाई, हर चुनौती का सामना करने को प्रस्तुत है लेकिन कहीं-कहीं उनकी निराशा और टूटन की झलक भी मिलती है। विशेष रूप से पत्र-पत्रिकाओ के प्रकाशन से जुड़ी समस्याओं के संदर्भ में। प्रेमचंद ने अपने प्रसिद्ध पत्र 'हंस' के साथ-साथ 'जागरण' का दायित्व भी संभाला था लेकिन पत्रिकाओं की दयनीय दशा का असर उनके प्रकाशन पर भी पड़ा, उनके पूरे श्रम और समर्पण के बावजूद भी दोनों पत्र घाटे में चलते रहे। कभी कागज के पैसे चुकाने में कठिनाई हो, कभी मजदूरों के वेतन की समस्या, जिससे निपटने के लिए वें पूँजीपतियों से गुजारिश करते हैं ताकि विज्ञापन मिल सकें, इधर-उधर हाथ-पैर मारते हैं, पर फिर भी प्रकाशन का कार्य छोड़ नहीं पाते। अपनी किताबों की आमदनी फूंककर अपनी जिन्दगी का आराम-चौन गंवाकर भी इस कार्य को संभाले रहते हैं। अपने सहयोगी मित्रों को लिखे पत्रों में उनकी हताशा, छटपटाहट और जद्दोजहद बड़ी शिद्दत से उभरी है:

'दस हजार रुपए और ग्यारह साल की मेहनत सब अकारथ हो गई। इस प्रेस के पीछे कितने मित्रों से बुरा बना, कितनों से वादा खिलाफी की, कितना बहुमूल्य समय जो लिखने में कटता बेकार प्रूफ देखने में कटा। मेरी जिन्दगी की यह सबसे बड़ी गलती है।'

इस तरह, संवेदना के स्तर पर प्रस्तुत अध्याय प्रेमचंद के संघर्षशील व्यक्तित्व को रूपायित करने के साथ-साथ तयुगीन समस्याओं, साम्प्रदायिकता और पूँजीवाद के स्वरूप को भी प्रकट करता है। आज प्रेमचंद की प्रतिष्ठा एक युग-प्रवर्तक साहित्यकार के रूप में है लेकिन उस समय में वे किस तरह साहित्यिक विवादों के घेरे में फंसे रहे और साहित्य को व्यवसाय बनाने वाले साहित्य-कर्मियों का उन्होंने कैसे डटकर विरोध किया उससे उनके जीवट का पता चलता है। साहित्य को अपने जीवन का उद्देश्य मानने वाले प्रेमचंद ने प्रतिकूल परिस्थितियों में भी 'हंस' और 'जागरण' को चलाने का भरसक प्रयत्न किया लेकिन अपने निकट उन्हें यह स्वीकार करना पड़ा कि शायद यह उनके जीवन की सबसे बड़ी गलती थी। फिर भी तमाम निराशाओं के बावजूद वे निरुत्साहित नहीं हुए बल्कि जीवन के अंत तक

टिप्पणी

अपनी इस साधना में लीन रहे। प्रेमचंद के ऐसे अपराजेय, युगद्रष्टा और क्रान्तदर्शी व्यक्तित्व को साकार करने में अमृतराय निश्चित रूप से सफल रहे हैं। प्रस्तुत अध्याय इस सत्य का प्रमाण है।

4.7 कलम का सिपाही : शिल्पगत वैशिष्टय

कलम का सिपाही एक जीवनी है और जीवनी का शिल्प अत्यंत विशिष्ट होता है। यह एक व्यक्ति के संपूर्ण जीवन की कथा है लेकिन कथात्मक होते हुए भी उपन्यास की भांति इसके पात्र कल्पना निर्मित नहीं हैं। सत्य घटनाओं और तथ्यात्मकता का निर्वाह इसके लिए परमावश्यक है। अत: यहाँ लेखक तथ्यों से बंधा रहता है, वह स्वेच्छा से न तो घटनाओं को बदल सकता है न मनचाहा मोड़ दे सकता है। साथ ही यह भी ध्यान रखना जरूरी है कि तथ्यात्मकता पर बल देते हुए भी यह कोरा इतिहास नहीं है उसमें कल्पना, भावानुभूति का भी योगदान रहता है। इस दृष्टि से जीवनी लेखन रचनाकार से विशिष्ट रचना सामर्थ्य की अपेक्षा रखता है। जीवनी लेखन एक प्रक्रिया है- जहाँ रचनाकार चरित नायक की जीवन यात्रा का सहचर बनकर पाठक को भी उसका समभागी बनाता है। अमृतराय ने 'कलम का सिपाही' की रचना द्वारा भाषा और शिल्प पर अपनी पकड़ को सिद्ध कर दिया है। लेखक ने कथात्मक शैली में प्रेमचंद के जीवन की घटनाओं का क्रमबद्ध संयोजन किया है। वस्तुत: यहाँ कथा जैसा प्रवाह और सरसता भी है और वैज्ञानिक दृष्टि की तटस्थता और निरपेक्षता भी।

प्रेमचंद के चरित्र को समग्रता से प्रस्तुत करने के लिए लेखक ने उसके चरित्र के मुख्यत: दो पक्षों को उजागर किया है। एक उनका निजी व्यक्तिगत पक्ष जहाँ वे बराबर अर्थाभाव से जूझते, छोटी-छोटी पारिवारिक परेशानियों में फंसे दिखाई पड़ते हैं तो उनके व्यक्तित्व का दूसरा पक्ष सामाजिक-राष्ट्रीय उत्थान के लिए संकल्पबद्ध नजर आता है। चरित्र चित्रण के लिए लेखक ने जो शैली अपनाई है उसमें प्रेमचंद के लंबे-लंबे वक्तव्यों के उद्धरण हैं और बीच-बीच में उनपर लेखक की अपनी टिप्पणियाँ हैं। प्रस्तुत अध्याय में अनेक मुद्दों पर जैसे कि पूँजीवाद, साम्प्रदायिकता, साहित्यिक गुटबाजी, साहित्य में अर्थ के हस्तक्षेप आदि पर प्रेमचंद के विचार संकलित हैं। इन सबमें प्रेमचंद के बहु-आयामी व्यक्तित्व की झलक मिलती है। जीवनी : कलम का सिपाही लंबे उद्धरण होने से लेखक का अपना हस्तक्षेप बहुत सीमित हो गया है। सवाल यह है कि (अमृतराय) क्या यह पद्धति जीवनी की सरसता को बाधित करती है? इसके उत्तर में कहा जा सकता है कि ऐसा जीवनी की प्रामाणिकता और विश्वसनीयता को बढ़ाने के लिए किया गया है। इससे, नोट पूरी जीवनी में प्रेमचंद की मौजूदगी का अहसास भी बढ़ा है और बीच-बीच में जहाँ लेखक की टिप्पणियाँ हैं वे अत्यंत सशक्त हैं जैसे बनारसीदास चतुर्वेदी के प्रसंग में जहाँ प्रेमचंद ने 'साहित्यिक गुंडापन' का पर्दाफाश करते हए व्यावसायिकता के लिए सनसनी पैदा करने की पद्धति से बचने का आग्रह किया है। अमृतराय लिखते हैं - 'चतुर्वेदी जी शायद खुद भी अपनी वकालत इतने जोरदार शब्दों में न कर पाते। मैदान में उतरने पर मुंशी जी फिर सुध-बुध खोकर लड़ते हैं, न आगे देखते हैं न पीछे।'

अमृतराय ने प्रेमचंद का व्यक्तित्वांकन इस रूप में किया है कि उसके माध्यम से युगीन अभिव्यक्ति भी सस्वर हो गई है। वस्तुत: इस जीवनी में व्यक्ति और युग का अद्‌भुत समन्वय जीवनी की रचना प्रक्रिया में पूर्णत: अनुस्यूत है। प्रेमचंद द्वारा ब्राह्मणवाद के खण्डन के प्रसंगों में लेखक यह स्पष्ट कर पाया है कि बदलते समय में सामाजिक समीकरणों के बदलने पर भी शोषण का रूप नहीं बदला। प्रेमचंद का विरोध उन टकेपंथी ब्राह्मणों से है जो अपने प्राचीन अधिकारों के दम पर एक बड़े वर्ग को साधन और सुविधाओं से वंचित किए हुए है। अमृतराय टिप्पणी करते हैं-'मुंशी जी की लड़ाई उनके इसी ध र्म-उपजीवी, धर्म व्यवसायी रूप से है, ब्राह्मण जाति से लड़ाई करके क्या होगा।'

अमृतराय ने इस जीवनी की रचना एक विस्तृत फलक पर की है। इसीलिए उन्हें सामग्री संकलन के लिए भी कठोर परिश्रम करना पड़ा है। वस्तुत: एक ही अध्याय में प्रेमचंद के व्यक्तित्व के कितने पक्ष उजागर हुए हैं यह लेखक के श्रम का प्रमाण है। उनके पत्रों, संपादकीय टिप्पणियों और कहानी के साक्ष्य से प्रेमचंद की एक समग्र छवि उभारने में अमतराय सफल रहे हैं।

कलम का सिपाही की सफलता का बहुत बड़ा श्रेय इसकी भाषा को भी है। डॉ. बच्चन सिंह ने लिखा है – 'भाषा और शैली तो लेखक को प्रेमचंद से विरासत में मिली है। सारी जीवनी अद्‌भुत प्रवाहमयता से युक्त है। यह लेखक की महत्वपूर्ण उपलब्धि है। जीवनी साहित्य के लिए उसने भाषा का नया आदर्श प्रस्तुत किया है।' (डॉ. बच्चन सिंह – कलम का सिपाही : एक युग का संदर्भ; संपा. मन्मथनाथ गुप्त – समसामयिक हिंदी साहित्य, पृ.193)

वस्तुत: पूरी जीवनी में प्रेमचंद के लंबे-लंबे उद्धरण दिए गए हैं। अत: जीवनी में प्रेमचंद और अमतराय दोनों के ही भाषाधिकार का परिचय मिलता है। प्रेमचंद की भाषा भावाविष्ट भाषा है, उनकी तुलना में अमृतराय ने अधिक संयम का परिचय दिया है। मुख्यत: प्रेमचंद को प्रेमचंद के ही शब्दों में चित्रित किया गया है लेकिन जहाँ बीच में रुककर लेखक ने अपनी टिप्पणी की है वहाँ उसके शब्द चयन और वाक्य विन्यास उसकी भाषा की प्रौढ़ता के सूचक हैं। अमृतराय में कम शब्दों में अधिक कहने की सामर्थ्य है। सरसता, रोचकता और प्रवाह के गुण उनकी भाषा में सहज ही समाविष्ट हो गए हैं :

'मुंशी जी इस हमले से सिटपिटा जाने वाले आसामी नहीं है।'

'मुंशी जी ने शेर की तरह दहाड़ते हुए फौरन 'जागरण' में जवाब दिया...'

'किसान की सरलता है तो कहीं उसी किसान का घाघपन भी है। निरे भोंदू नहीं हैं मुंशी जी!'

कलम का सिपाही को प्रशंसनीय कथोपलब्धि मानते हुए शिवप्रसाद सिंह लिखते हैं – कलम का सिपाही अमृतराय की प्रशंसनीय कथोपलब्धि मानी जाएगी। यह अद्‌भुत किस्सागोई और टटस जबान किसी को भी एक बार अपनी लपेट में ले लेगी, इसमें तनिक भी संदेह नहीं।' (शिवप्रसाद सिंह : 'एक व्यक्ति: एक युग', संपा. देवीशंकर अवस्थी, विवेक के रंग, पृ.417)

4.8 'कलम का सिपाही' का मूल्यांकन

जीवनी व्यक्ति-जीवन और युग सत्य के समंजन से नि:सृत एक अनूठी विधा है और जब यह जीवनी एक साहित्यकार की होती है तब उसे एक ओर आयाम मिल जाता है। उसमें लेखक की रचना-प्रक्रिया भी स्पष्ट होने लगती है। प्रेमचंद की जीवनी 'कलम का सिपाही' इस दृष्टि से उनके जीवन के सभी पक्षों को प्रस्तुत करने वाला दस्तावेज है। शिवप्रसाद सिंह मानते हैं – 'यह जीवनी एक प्रकार से हिंदी के आधुनिक युग के आरंभ का ज्ञानकोश बन गई है। इसके माध्यम से अनेक समस्याएँ – राजनीतिक, सामाजिक, साहित्यिक जो हमारे देश के इतिहास का अंग बन गई हैं, नए सिरे से एक व्यक्ति का संदर्भ बनकर उठी हैं और ये 'प्रेमचंद व्यक्ति' को समझने में सहायक हुई हैं। उनसे हमारे साहित्य पर एक नया प्रकाश पड़ा है।' (शिवप्रसाद सिंह : 'एक व्यक्ति : एक युग', संपा. देवीशंकर अवस्थी, विवेक के रंग, पृ.417)

प्रेमचंद पर तीन जीवनियाँ लिखी गई हैं। उनकी पत्नी शिवरानी देवी ने 'प्रेमचंद : घर में' शीर्षक से उनके जीवन प्रसंगों का संयोजन किया। श्री मदन गोपाल ने 'कलम का मजदूर' लिखकर प्रेमचंद के जीवन और साहित्य पर प्रकाश डाला। कलम का सिपाही इन दोनों जीवनियों से भिन्न है। उसमें रचनात्मक साहित्य जैसी सरसता और प्रवाह है। साथ ही, प्रेमचंद के बहु-आयामी व्यक्तित्व को उनके

टिप्पणी

युग और साहित्य के परिप्रेक्ष्य में रखकर देखा गया है। जीवनी के लेखक के लिए उन शक्तियों की पहचान करना आवश्यक है जो उसके चरित नायक के जीवन को गढ़ती है। इस दृष्टि से अमृतराय द्वारा लिखित 'प्रेमचंद : कलम का सिपाही' हिंदी जीवनी साहित्य को उनका प्रशंसनीय योगदान है। हिंदी साहित्य में प्रेमचंद एक ऐसा नाम है जिसे किसी परिचय की अपेक्षा नहीं। उनका साहित्य सोद्देश्य साहित्य है।

वस्तुत: पुनर्जागरण के उस दौर में प्रेमचंद के लिए साहित्य एक अस्त्र है - राजनीतिक सामाजिक परिवर्तन को संभव बनाने का। इसीलिए उनके द्वारा लिए गए प्रत्येक शब्द, प्रत्येक पंक्ति में उनका वैचारिक संघर्ष प्रतिध्वनित होता है। प्रेमचंद ने न केवल अपने साहित्य में तत्कालीन युग यथार्थ की संश्लिष्ट अभिव्यक्ति की है अपितु उस युग यथार्थ को निर्मित करने में एक सक्रिय भूमिका भी निभाई है। अमृतराय ने प्रस्तुत जीवनी में उनके इसी स्वरूप को उभारने का प्रयत्न किया है।

यह जीवनी एक पुत्र द्वारा लिखी गई अपने पिता की जीवनी है। अत: प्रेमचंद के निजी जीवन से उनका घनिष्ठ संबंध है। लेकिन अमृतसय ने प्रेमचंद का व्यक्तित्वांकन केवल उस घर के दायरे में रखकर नहीं किया। हर प्रकार की अतिरेकी दृष्टि से बचते हुए पूर्ण तटस्थता के साथ लेखक ने अपने चरित-नायक को उसके साहित्य और परिवेश के समस्त संदभी के बीच एक क्रांतिदशी विचारक, संघर्षशील चेतना के अग्रदूत, परिवर्तन कामी शक्तियों के पक्षधर के रूप में चित्रित किया है। यही इस जीवनी की सबसे बड़ी विशेषता है।

4.9 सारांश

जीवनी-व्यक्ति के जीवन और व्यक्तित्व को समग्रत: अभिव्यक्त करने वाली गद्य की महत्वपूर्ण विधा है। जीवनी के केंद्र में चरित नायक का जीवन एवं चरित्र, युग और पृष्ठभूमि सबका विशिष्ट कलात्मक समंजन रहता है। तथ्यपरकता तथा जीवनगत सत्य जीवनी के लिए जितने आवश्यक हैं उतनी ही अनिवार्यता उन अंत:प्रेरणाओं की है जिनसे चरित-नायक क विशिष्ट व्यक्तित्व निर्मित होता है। चरित-नायक के चयन में यह दृष्टि महत्वपूर्ण रहती है कि चरित-नायक कोई विशिष्ट व्यक्ति हो जिसका चरित्र समाज के लिए प्रेरक एवं व्यक्तित्व आकर्षक हो लेकिन आधुनिक युग में यह भावना भी दृढ़ हुई है कि अति-सामान्य जन-साधारण भी जीवनी का चरित-नायक हो सकता है। ऐसे लोगों की जीवनी तत्कालीन समाज व्यवस्था तथा उसमें निहित मानव मूल्यों की स्थिति को अनावृत्त करने वाली होती है। सामग्री संकलन जीवनी लेखन का एक महत्वपूर्ण चरण है। एक प्रामाणिक जीवनी के लिए जीवनी लेखक विभिन्न स्रोतों - जैसे कि चरितनायक की आत्मकथा, डायरी, पत्र, उसके द्वारा लिखा गया साहित्य, उसकी वक्तृताएँ आदि से सामग्री संकलन करता है। तथ्य संकलन जहाँ जीवनी को प्रामाणिक एवं विश्वसनीय बनाता है, वहीं अनुभूति और कल्पना का प्रयोग चरितनायक के चरित्रांकन में प्राण-प्रतिष्ठा करता है। चरितनायक के भावलोक और विचारक्षेत्र को साकार करने के लिए जीवनीकार तत्कालीन राजनीतिक-सामाजिक परिवेश के परिप्रेक्ष्य में चरितनायक के व्यक्तित्व को उभारता है। एक सजीव जीवनी के लिए लेखक की दृष्टि का तटस्थ एवं निष्पक्षतापूर्ण होना परमावश्यक है। जीवनी की परंपरा साहित्य के आदिकाल से ही चली आई है। आदिकालीन वीर काव्य, भक्तिकाल में 'परचई साहित्य' एवं 'वाती साहित्य' क्रमश: राजा-महाराजाओं एवं भक्तों के जीवन चरित पर ही आधारित है। उत्तर-मध्यकाल में भी चरित लेखन की परंपरा बनी रही लेकिन यह समस्त साहित्य जीवनी की पूर्व परंपरा के रूप में ही महत्व रखता है अन्यथा इसमें तथ्यपरकता एवं ऐतिहासिकता का सर्वथा अभाव रहा। आधुनिक युग में भारतेंदु, मुंशी देवी प्रसाद, कार्तिक प्रसाद खत्री, काशीनाथ खत्री, महावीर प्रसाद

द्विवेदी, बनारसीदास चतुर्वेदी आदि ने जीवनी रचना को अधिक प्रामाणिक एवं सरस बनाया। स्वातंत्र्योत्तर युग में ही जीवनी साहित्य अपने पूर्ण उत्कर्ष पर पहुँचा। चरित नायक के प्रति श्रद्धापरक दृष्टिकोण के स्थान पर रचनाकारों ने तटस्थ दृष्टि से अपने चरित-नायक के गुण-दोषमय चरित्र का सजीव अंकन किया।

अमृतराय द्वारा लिखित जीवनी प्रेमचंद : कलम का सिपाही जीवनी साहित्य की अन्यतम उपलब्धि है। प्रेमचंद जैसे युग-प्रवर्तक साहित्य सर्जक वैचारिक भावात्मक विकास को लेखक ने तत्कालीन परिवेश के संदर्भ में ही प्रस्तुत किया है। युग जीवन के साथ-साथ पारिवारिक प्रसंगों, मित्रों को लिखे गए पत्रों आदि के हवाल से अमृतराय ने प्रेमचंद के अंत:संघर्षों, मानसिक उथल-पुथल, आशाओं-निराशाओं को समग्र अभिव्यक्ति दी है। सामग्री संकलन के लिए लेखक को विशेष प्रयास करने पड़े हैं।

अध्याय 32 प्रस्तुत जीवनी की प्रातिनिधिक झलक प्रस्तुत करने में सक्षम है। इसमें गार्हस्थिक प्रसंगों के साथ-साथ युग के ज्वलंत प्रश्नों जैसे साम्प्रदायिकता, पूँजीवाद आदि पर प्रेमचंद के प्रगतिशील विचारों की झलक मिलती है। साथ ही, साहित्यिक जीवन के विवादों और साहित्य में अर्थ के हस्तक्षेप से जो 'साहित्यिक गुंडापन' पैदा हुआ प्रेमचंद उसका कडा विरोध करते दिखाई देते हैं। प्रस्तुत अध्याय प्रेमचंद के युगद्रष्टा, जीवट भरे व्यक्तित्व को प्रस्तुत करने में समर्थ है। प्रतिकूल परिस्थितियों में उनकी संघर्षशील जिजीविषा उन्हें डटे रहकर जूझने को बाध्य करती है।

अमृतराय ने प्रेमचंद की संपादकीय टिप्पणियों, पत्रों तथा सृजनात्मक साहित्य से लंबे-लंबे उद्धरण देते हुए उनके बहु-आयामी व्यक्तित्व को सजीव किया है। बीच-बीच में लेखक की अपनी तटस्थ एवं निष्पक्ष टिप्पणियाँ हैं। इस शैली से जहाँ एक ओर संवेदनात्मक घनत्व आया है वहीं शिल्प की विशिष्टता भी स्थापित हुई है। शिल्प के स्तर पर अमृतराय की शैली प्रौढ़ एवं प्रभावाभिव्यंजक है। उनके चरित्र चित्रण की पद्धति सजीव एवं आकर्षक है। उसमें कथात्मकता की सरसता तथा प्रवाह है।

भाषा पर अमृतराय का अद्वितीय अधिकार है। वे शब्दों के धनी हैं और उनके वाक्य-विन्यास में एक कसावट है। उनमें कम शब्दों में अधिक कहने की सामर्थ्य है। निष्कर्षत: यह जीवनी हिंदी साहित्य को अमृतराय की एक विशिष्ट देन है।

4.10 अभ्यास प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. **"हिंदी जीवनी साहित्य में कलम का सिपाही एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। इस कथन की समीक्षा कीजिए।**
2. **'कलम का सिपाही' में व्यक्ति और युग का अनूठा संयोजन हुआ है। इस कथन के आलोक में प्रस्तुत कृति का मूल्यांकन कीजिए।**
3. **कलम का सिपाही की शिल्पगत विशेषताओं का पठित अंश के आधार पर विवेचन कीजिए।**
4. **'कलम के सिपाही' जीवनी का उद्देश्य समझाऐं।**
5. **'कलम के सिपाही' जीवनी का स्वरूप स्पष्ट शब्दों में समझाऐं।**

टिप्पणी

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. जीवनी साहित्य की परंपरा और विकास पर प्रकाश डालें।
2. 'कलम के सिपाही' जीवनी की अन्यतम उपलब्धि समझाऐं।
3. 'कलम के सिपाही' की वस्तु और संवेदना अपने शब्दों में समझाऐं।
4. 'कलम के सिपाही' का शिल्पगत वैशिष्टय समझाऐं।
5. 'कलम के सिपाही' जीवनी का मुल्यांकन अपने शब्दों में करें।

♦♦♦♦♦

इकाई 5

आत्मकथा : क्या भूलूँ क्या याद करूँ (हरिवंश राय बच्चन)

पाठ-संरचना

5.1 उद्देश्य
5.2 प्रस्तावना
5.3 आत्मकथा के रूप में क्या भूलूँ क्या याद करूँ
5.4 क्या भूलूँ क्या याद करूँ की अंतर्वस्तु
5.5 क्या भूलूँ क्या याद करूँ में लेखक के विचार
5.6 क्या भूलूँ क्या याद करूँ का संरचना शिल्प
5.7 क्या भूलूँ क्या याद करूँ का महत्व और उपयोगिता
5.8 सारांश
5.9 अभ्यास प्रश्न

टिप्पणी

5.1 उद्देश्य

गद्य की महत्वपूर्ण विधा आत्मकथा पर पाठ्यक्रम की इस इकाई में आप हरिवंश राय बच्चन की चार भागों में स्वतंत्र रूप से प्रकाशित आत्मकथा के प्रथम भाग क्या भूलूँ क्या याद करूँ का अध्ययन करेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- आत्मकथात्मक कृति के रूप में क्या भूलूँ क्या याद करूँ को पढ़ने की जरूरत और महत्व को समझ पाएँगे,
- क्या भूलूँ क्या याद करूँ की अंतर्वस्तु की विशेषताएँ बता पाएँगे,
- क्या भूलूँ क्या याद करूँ में व्यक्त लेखक के विचार को समझ पाएँगे, और
- आत्मकथा की परंपरा में क्या भूलूँ याद करूँ के महत्व और उपयोगिता को स्पष्ट कर सकेंगे।

5.2 प्रस्तावना

इससे पहले आप रेखाचित्र, संस्मरण और जीवनी विधाओं का अध्ययन कर चुके हैं। हिंदी गद्य की नवीन विधाओं में आत्मकथा का महत्वपूर्ण स्थान है। पाठ्यक्रम की इस तेईसवीं इकाई में आप हरिवंश राय बच्चन की आत्मकथा क्या भूलूँ क्या याद करूँ के एक अंश का अध्ययन करने जा रहे हैं।

हिंदी आत्मकथा के इतिहास में क्या भूलूँ क्या याद करूँ का विशेष महत्व है। साहित्य में बच्चन की पहचान 'मधुशाला' के कवि के रूप में अधिक है और इस बात की बार-बार चर्चा होती है कि इसकी रचना की प्रेरणा उन्हें उमर खैय्याम की रूबाइयों के साथ-साथ वास्तविक जीवन की उन घटनाओं से भी मिली थी जिसे उन्होंने भोगा और महसूस किया था। वे घटनाएँ क्या हैं और उनका लेखक के जीवन से क्या संबंध है - इसकी जानकारी इस आत्मकथा के सिवाय किसी अन्य कृति में प्राप्त नहीं हो सकती। क्या भूलूँ क्या याद करूँ में बच्चन ने नि:संकोच भाव से अपने जीवन की उन घटनाओं और प्रसंगों का उल्लेख किया है जिनका गहरा संबंध, उनके लेखन और व्यक्तित्व के विकास से रहा है। इसमें उनकी जाति, परिवार शिक्षा, परिवेश और मित्रों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। इस अध्ययन मे हम देखेंगे कि लेखक किस प्रकार अपनी निजता को सार्वजनिक करता है और चेतन-अचेतन अवस्था में अपने मस्तिष्क के ऊपर पड़ने वाले प्रभावों का तटस्थ होकर आकलन करता है।

आत्मकथा लेखन की अपनी एक विशिष्ट प्रक्रिया होती है। बिना तटस्थता, आत्मालोचन और जीवन की कथा को युगीन संदर्भो से जोड़े - कोई भी आत्मकथा प्रभावशाली नहीं हो सकती है। इनके अतिरिक्त लेखन की विशिष्ट शैली आत्मकथा को पठनीय बनाती है। क्या भूलूँ क्या याद करूँ की संरचना पर विचार करते हुए हम इसकी लेखन शैली का आकलन भी करेंगे। यहां हम यह भी देखेंगे कि आत्मकथा की रचना में लेखक ने जातीय, पारिवारिक और सामाजिक संदर्भो का उपयोग किस प्रकार किया है।

किसी भी कृति की रचना में लेखक के विचारों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। यह एक तरह से लेखक की सामाजिक दृष्टि और रचना के स्थायी होने का प्रमाण भी होती है। क्या भूलूँ क्या याद करूँ में लेखक ने व्यक्ति, समाज, धर्म, दर्शन, लेखन आदि से जुड़े अनेक मुद्दों पर गंभीरता से विचार किया है। इस अध्ययन में हम देखेंगे कि किस प्रकार ये विचार आत्मकथा में उन प्रसंगों और घटनाओं को स्थायी महत्व का बना देते हैं, जिसे लेखक महत्वपूर्ण मानता है तथा पाठकों का ध्यान उस और आकर्षित करना चाहता है। वस्तुत: साहित्य की परंपरा और मनुष्य समाज की जिंदगी में प्रत्येक रचना की अपनी एक अलग महत्ता और उपयोगिता होती है। क्या भूलूँ क्या याद करूँ की चर्चा करते हुए हम इस बात पर विचार करेंगे कि आत्मकथा और हिंदी की परंपरा में इस कृति का क्या महत्व साहित्य रहा है।

टिप्पणी

ये कुछ ऐसे प्रसंग और बिंदु है जिन पर हम इस इकाई में अलग-अलग विचार करेंगे।

5.3 आत्मकथा के रूप में 'क्या भूलूँ क्या याद करूँ'

क्या भूलूँ क्या याद करूँ हिंदी की सर्वाधिक चर्चित आत्मकथाओं में से एक है। कृति के शीर्षक से स्पष्ट पता चलता है कि लेखक के निजी और सार्वजनिक जीवन में ऐसी घटनाएँ घटित हुई होगी, जिनका उल्लेख वह यहां करना चाहता है। पर किनका करें, किनका नहीं - तय। नहीं कर पाता है। बावजूद इसके, असमंजस की स्थिति से वह मुक्त होता है और इस कृति में उन घटनाओं, प्रसंगों और स्थितियों का उल्लेख करता है, जिनका गहरा संबंध उसकी प्रारंभिक जिंदगी से रहा है और एक समय जिसने उसके जीवन की दशा और दिशा - दोनों को पूरी तरह से बदल दिया था। बच्चन के जिस कवि व्यक्तित्व से आज पूरा हिंदी संसार। परिचित है - उसका स्रोत इस आत्मकथात्मक कृति में आसानी से ढूँढ़ा जा सकता है। इसलिए इस आत्मकथात्मक कृति को पढ़ने का अर्थ एक रचना का आस्वादन करना ही नहीं है, बल्कि उन मार्मिक स्थितियों से गुजरना भी है जिसके कारण बच्चन के रचनात्मक व्यक्तित्व का। निर्माण और विकास होता है और 'मधुशाला', 'मधुबाला', 'निशा निमंत्रण' जैसी काव्य-कतियाँ रची जाती हैं। क्या भूलूँ क्या याद करूँ स्पष्टत: बतलाती है कि इसे पढ़ने का अर्थ लेखक के बचपन से लेकर पहली पत्नी 'यामा की मृत्यु तक के जीवन क्रम को जानना ही नहीं, अपितु उस समय के समाज को समझना भी है, जब भारत में जातिवादी और आत्मकथा : क्या भूलूँ क्या याद धार्मिक संस्थाएँ मजबूत थीं, सामाजिक जिंदगी में उनका बोलबाला था और तत्कालीन ब्रिटिश करूँ (हरिवंश राय बच्चन) साम्रज्यवाद उनके सहयोग से शासन और दमन के रास्ते पर बढ़ रहा था। इन बातों का संकेत जगह-जगह इस कृति में मिल जाएगा।

नोट वस्तुत: प्रत्येक बड़ी रचना का अपना एक सच होता है। अधिकांशत: इस सत्य का दर्शन रचना की अंतर्वस्तु में निहित होता है। 'क्या भूलूँ क्या याद करूँ' को पढ़ते हुए बार-बार इस बात का एहसास होता है कि बच्चन अपने जीवन की जिन सच्चाइयों से पाठक समाज को परिचित कराना चाहते हैं, वे उनकी जरूर है पर उनका गहरा संबंध तत्कालीन युगीन परिवेश से रहा है तथा वे सच्चाइयाँ ऐसी नहीं हैं कि व्यर्थ का प्रचार करें। नायब साहब, राधा बुआ, बाबा भोलानाथ, पिता प्रतापनायण, पत्नी श्यामा, मित्र कर्कल चंपा-प्रकाशों - श्रीकृष्ण आदि की जिंदगी की सच्चाइयों का गहरा संबंध लेखक के जीवन और युगीन परिवेश से रहा है, पर उनको लेकर वह आत्मालोचन अधिक करता है, प्रचार क्रम। इतना ही नहीं उनको लेकर उसके अंदर भावुकता नहीं है बल्कि, वह मानता है कि प्रत्येक व्यक्ति के जीवन के कुछ 'मार्मिक प्रसंग' होते हैं, जिन्हें लेकर वे अपनी जिंदगी की एक दिशा तय कर लेते हैं। इस आत्मकथा को पढ़ते हुए इसके पात्रों की जिंदगी में आए निर्णायक क्षण से 'सच' को समझा जा सकता है। जिस 'संयम के विस्फोट' की चर्चा लेखक बार-बार इस कृति में करता है, वह उसकी जिंदगी की एक सच्चाई है जिसे वह पहली पत्नी श्यामा की बीमारी के चलते शारीरिक स्तर पर दूर रहने के कारण प्राप्त करता है। अगर बच्चन ने यह आत्मकथा नहीं लिखी होती तो शायद ही हम उनके जीवन की इस सच्चाई से परिचित हो पाते और 'मधुशाला' में व्यक्त प्रेम और विरह का रहस्य समझ पाते। पहले संस्करण की भूमिका में उन्होंने लिखा भी है कि मुझे कई वर्षों से लग रहा था कि जब तक मैं अपने अंतर में निरंतर उठती स्मृतियों को चित्रित न कर डालूँगा तब तक मेरा मन शांत नहीं होगा।"

वास्तव में क्या भूलूँ क्या याद करूँ को पढ़ने का अर्थ है 'मधुशाला' के कवि हरिवंशराय बच्चन की प्रारंभिक जिंदगी को नजदीक से देखना. उसे महसस करना. समझना और उस भारतीय समय तथा समाज को जानना, जब जातीय और धार्मिक संस्थाओं का विकास जोरों पर था एवं स्वाधीनता आंदोलन

टिप्पणी

गांधीवाद तथा क्रांतिकारी गतिविधियों के बीच से नया मार्ग ढूंढ रहा था। यद्यपि इस कृति में इनका व्यापक वर्णन नहीं है और न ही विधा तथा लेखक की जिंदगी को देखते हुए उसकी जरूरत भी है, पर जगह-गह अनेक ऐसे संकेत हैं जो इस बात का प्रमाण प्रस्तुत करते हैं।

5.4 'क्या भूलूँ क्या याद करूँ' की अंतर्वस्तु

कृति को महत्वपूर्ण बनाने में विषयवस्तु की विशेष भूमिका होती है। एक तरह से यह रचना में व्यक्त जीवन और लेखक के अनुभव तथा दृष्टि की वास्तविकता एवं व्यापकता का प्रमाण भी प्रस्तुत करती है। आत्मकथा में यह विषयवस्तु लेखक की निजी जिंदगी और अनुभव पर आकर केंद्रित हो जाती है, पर उसका गहरा संबंध उसके चरित्र के विकास से संबंधित स्थितियों एवं घटनाओं से होता है। क्या भूलूँ क्या याद करूँ के प्रारंभ में बच्चन ने प्रसिद्ध फ्रांसीसी लेखक मानतेन की पंक्तियों को उद्धृत करते हुए लिखा है कि मैं स्वयं अपनी पुस्तक का विषय हूँ, मैं अपने गुण-दोष जग-जीवन के सम्मुख रखने जा रहा हूँ, पर ऐसी स्वाभाविक शैली में जो लोक-शील से मर्यादित हो।"

स्पष्टत: मानतेन की इन पंक्तियों के माध्यम से बच्चन ने अपनी पुस्तक की विषयवस्त को जाहिर कर दिया है। पर इस प्रथम भाग में वे अपने संपूर्ण जीवन की चर्चा न करके केवल कायस्थ जाति, परिवार की परंपरा, जन्म, शिक्षा और जीवन संघर्ष से लेकर प्रथम पत्नी श्यामा की मृत्यु तक की घटनाओं का चित्रण करते हैं। बाद का जीवन उन्होंने आत्मकथा के अन्य भागों में अभिव्यक्त किया है। पर हमारे लिए यहाँ यह देखना महत्वपूर्ण होगा कि अपने जीवन की इस कथा को लेखक ने रचना की अंतर्वस्तु के रूप में किस प्रयोजन और आकांक्षा के साथ विकसित किया है। उसकी अभिव्यक्ति का स्वर और संदर्भ किस प्रकार का है तथा चेतना और विचार के स्तर पर वह किस तरह पाठकों के सामने अपने आपको रखते हैं।

भारतीय समाज में जाति की भूमिका के नकारात्मक पहलुओं को लेखक ने कई प्रसंगों द्वारा उजागर किया है। इसी में से एक घटना पठित अंश में भी है। कायस्थ विधवा स्त्री जिसे अपने जीवन यापन क लिए विजातीय व्यक्ति से संबंध जोड़ना पड़ा, उसे अपनी बेटी के विवाह पर कायस्थों का बहिष्कार भी झेलना पड़ा। लेकिन बच्चन और उन जैसे प्रगतिशील युवक उस विवाह में शामिल होते हैं। यह और बात है कि इस कारण खुद लेखक के परिवार को बहिष्कार का सामना करना पड़ता है।

क्या भूलूँ क्या याद करूँ में लेखक ने अपने जन्म और परिवार से जुड़े उन प्रसंगों और घटनाओं का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है जो उसके व्यक्तित्व निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि एक व्यक्ति के विकास और उसके सर्जनात्मक व्यक्तित्व के निर्माण में किस प्रकार परिवार और उसकी परंपराएँ सार्थक भूमिका निभाती है, इसे विवेच्य आत्मकथा को पढ़कर समझा जा सकता है।

वास्तव में प्रत्येक परिवार की कुछ निजी विशेषताएँ और परंपराएँ होती हैं जिनका गहरा असर उनकी आने वाली संतानों पर पड़ता है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि बच्चन के रचनात्मक व्यक्तित्व के निर्माण, विकास और समाजीकरण में उनके परिवार की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। खासकर परिवार के सदस्यों का व्यक्तित्व, जीवन-शैली और धार्मिक मान्यताओं तथा परंपराओं का गहरा असर उनके बालमन पर पड़ा है और इसी अवस्था में उनकी मानसिकता का निर्माण होता है। क्या भूलूँ क्या याद करूँ को पढ़ते हुए बच्चन के व्यक्तित्व निर्माण में परिवार की इस भूमिका के महत्व को स्पष्टत: देखा जा सकता है। कई बार तो लगता है कि उनके रचनात्मक व्यक्तित्व के निर्माण में भी समाज और राष्ट्र से अधिक उनके परिवार और उसकी परंपराओं की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। यद्यपि इसमें मित्र भी

टिप्पणी

निर्णायक भूमिका निभाते हैं, पर परिवार उसे व्यवस्थित करता है और उसे आगे बढ़ने की प्रेरणा और संबल भी देता है। बच्चन के जीवन में शिक्षकों और शिक्षा संस्थाओं की भी महत्वपूर्ण भूमिका रही हैं जिनका उल्लेख उन्होंने विस्तार से किया है। पठित अंश में आपने उन शिक्षा संस्थाओं के बारे में पढ़ा है जिसमें अध्यापक के रूप में उन्होंने काम किया था।

हरिवंशराय बच्चन की इस आत्मकथा में संघर्ष का सर्वाधिक महत्वपूर्ण पक्ष है अस्तित्व रक्षा के लिए किया गया प्रयास। यह प्रयास एक तरफ जहाँ युगीन परिवेश को पूरी तल्खी के साथ चित्रित करता है, वहाँ दूसरी तरफ यह भी दिखलाता है कि किस प्रकार सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक और राजनीतिक विसंगतियों से आत्मकथा का नायक टकराता है, उनसे जूझता है और फिर मुक्त होकर आगे बढ़ जाता है। इसमें उसके परिवार की वे सारी घटनाएँ और परंपराएँ महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है जो उसे नैतिक रूप से मजबूत बनाती हैं और विपरीत परिस्थितियों में सही काम करने की प्रेरणा देती हैं। खासकर पढ़ाई और बाद में पत्नी तथा आत्मकथा : क्या भूलूँ क्या याद बामारा के दौरान किया गया उसका आर्थिक संघर्ष अत्यंत दारुण है। सबह-शाम टयशन से करू (हारवश राय बच्चन) लेकर वह 'चाँद' पत्रिका में नौकरी जहाँ से महीने भर बाद बिना तनख्वाह दिए बाहर निकाल दिया जाता है। स्कूल अध्यापकी में भी व्यवस्था की बेईमानी का शिकार होता है और पच्चीस नोट रुपये की जगह पैंसठ पर हस्ताक्षर करता है। यह काम देश भक्ति के नाम पर कराया जाता है। तत्कालीन शिक्षा संस्थानों में इस प्रकार के भ्रष्टाचार किस तरह शैक्षणिक माहौल और शिक्षकों को शिक्षण के प्रति उदासीन बनाने में सक्रिय भूमिका निभाते थे, इसका अंदाजा इन प्रसंगों से लगाया जा सकता है। लेखक ने अपने लेखन के आरंभिक प्रयासों का भी मार्मिक विवरण प्रस्तुत किया है। अपनी पहली पुस्तक का प्रकाशन उसके लिए कितना आह्लादकारी था, यह हम पढ़कर महसूस कर सकते हैं। यहाँ बच्चन ने कहानीकार और कवि में से चुनने के प्रसग का भी वर्णन किया है। इस संदर्भ में बच्चन का यह कथन द्रष्टव्य है : 'जीवन की ऐसी आकस्मिक घटनाएँ ही वास्तव में जीवन को दिशा देती हैं, और जिसे हम 'नियति' का गंभीर-सा नाम देते हैं वह शायद बहुत नगण्य-सी लगने वाली घटनाओं से अपने बड़े-बड़े लक्ष्य प्राप्त करती रहती है।' यद्यपि 1933 में सुषमा निकुंज प्रकाशन द्वारा खुद 'मधुशाला' के प्रकाशन के बाद घर की आर्थिक स्थिति में कुछ सुधार होता है, पर उन दिनों के आर्थिक संघर्ष की भयानकता का अंदाजा निम्नलिखित पंक्तियों से लगाया जा सकता है : "रात को खाना बनाने के बाद पढ़ाने जाता और ग्यारह बजे रात के करीब लौटता-कीटगंज से मुट्ठीगंज तक की सुनसान सड़कों पर 'खचर', 'खचर' साइकिल चलाता, जाड़ों में ठिठुरता। उन दिनों की अपनी मेहनत-मशक्कत, अपने मन के। तनाव, दिमाग के खिंचाव की याद करता हूँ तो लगता है कि मैं कोई दैत्य ही रहा हूँगा जो यह सब झेलता-ठेलता हूँगा।"

बच्चन की आत्मकथा में संघर्ष का सर्वाधिक महत्वपूर्ण पक्ष है देश की ब्रिटिश साम्राज्यवाद से मुक्ति की आकांक्षा और इसके लिए व्यक्तिगत तथा रचनात्मक स्तर पर किया गया प्रयास। इस कृति में तत्कालीन भारत की जिन राजनीतिक गतिविधियों का संकेत और चित्रण मिलता है उनमें भारतीयों पर अंग्रेजों का अत्याचार, गदर में बाबा भोलानाथ के घायल होने की चर्चा, गाँधी और उनके राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन, क्रांतिकारियों के साथ सहयोग, प्रथम विश्व युद्ध का उल्लेख, बाल गंगाधर तिलक की चर्चा आदि प्रमुख है। देश के राजनीतिक परिवेश में हो रहे इन संघर्षों से लेखक किसी-न-किसी रूप में अपने आपको जोड़ता है और मानता है कि इनमें सक्रिय हिस्सेदारी न निभाने के बावजूद उसकी उपस्थिति किसी-न-किसी रूप में महत्वपूर्ण रही है।

गांधीजी की उपस्थिति में स्वरचित गीत 'सर जाए तो जाए, पर हिंद आजादी पाए' का हजारों की उपस्थिति में श्यामा कुमारी नेहरू द्वारा लोगों से गँवाना आदि इसी स्वाधीनता आंदोलन के हिस्से हैं।

आत्मकथा : क्या भूलूँ क्या याद करूँ (हरिवंश राय बच्चन)

टिप्पणी

गांधी जी के प्रभाव में आकर स्वाधीनता आंदोलन में अपनी भागीदारी की चर्चा करते हुए आत्मकथाकार ने लिखा है कि मैं आंदोलन में सक्रिय भाग लेने की स्थिति में न था, जुलूसों में नारे लगाता, सभाओं में शामिल होता। घर में चर्खा-चलाता, जमुना पार गाँवों में जाकर व्याख्यान देता। कुछ रचनात्मक कार्य करने को भी मैंने सोचा- हम खद्दर का प्रचार करेंगे। इसी प्रकार श्रीकृष्ण और उसके सहयोगियों तथा अन्य क्रांतिकारियों में सुखदेवराज, चंद्रशेखर आजाद, दुर्गा भाभी, प्रकाशवती पाल आदि को लेखक द्वारा अपने घर में आश्रय देना - उसके राजनीतिक संघर्ष का ही एक हिस्सा है। तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक और राजनीतिक संघर्ष के ये कुछ ऐसे चित्र हैं जिनका मार्मिक चित्रण इस कृति में दिखलाई पड़ता है।

किसी भी मनुष्य के संघर्ष और निर्माण में कुछ लोगों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। क्या भूलूँ क्या याद करूँ में आत्मकथाकार ने परिवार के अलावा अनेक ऐसे लोगों का उल्लेख और वर्णन किया है जो उसके संघर्ष, निर्माण और विकास के साथी और सहयोगी रहे हैं। इन व्यक्तियों में एक तरफ जहाँ उनके मित्र, अध्यापक और रचनाकार साथी रहे हैं, वहीं दूसरी तरफ कुछ ऐसे व्यक्ति भी रहे हैं जिनके नकारात्मक और सकारात्मक व्यवहार के कारण लेखक को अपने जीवन की दिशा तय करने में मदद मिलती है। यद्यपि श्यामा लेखक की पत्नी है, परंतु इस कृति में वह लेखक के संघर्ष और निर्माण में जिस तरह की भूमिका निभाती है वह कई मायने में किसी सच्चे मित्र से कम नहीं है। लेखक उसे 'ज्वॉय' कहता है और चह उसे 'सफरिंग'। एक मित्र रूप में उसके योगदान की चर्चा करते हुए वह कहता है कि 'सबसे अधिक अपने इच्छाबल से उसने मुझे अपने रास्ते पर न ठहरने दिया, न पीछे फिरने दिया - 'राह पकड़ तू चला चल पा जाएगा मधुशाला।' जिस धैर्य और लगन से श्यामा उसके रचनात्मक व्यक्तित्व के निर्माण में मदद करती है, वह अद्‌भुत है। विपरीत परिस्थितियों में भी वह धैर्य नहीं खोती है और हमेशा लेखक की हिम्मत बढ़ाती है।

क्या भूलूँ क्या याद करूँ में लेखक ने खुलकर भारतीय समाज में स्त्रियों की दशा और दिशा के बारे में अपने भावों और विचारों को अभिव्यक्त किया है। इस कृति में अनेक जगह वह परिवार और समाज के प्रतिबंधों को तोड़ते हुए विषम परिस्थितियों में स्त्रियों की मदद करता है चाहे वह चंपा हो या प्रकाशों यद्यपि इन स्त्रियों के प्रति लेखक के अंदर एक भावुकता-भरा आकर्षण है, पर इससे वह मुक्त भी जल्दी हो जाता है। वह यह भी मानता है कि आर्थिक स्वतंत्रता, एक हद तक ही स्त्री-समाज को महत्व देता है और पुरुष के दबाव से मुक्त करता है क्योंकि अगर ऐसा नहीं होता तो आज यूरोप में स्त्रियाँ बहुत अच्छी स्थिति में होती। पर यूरोप में भी ऐसा नहीं है। वह कहता है कि जहाँ आर्थिक स्वतंत्रता संभव हुई है वहाँ, इसमें संदेह नहीं, एक-दूसरे से दबने की भावना दूर हो गई। पर यह केवल बाहरी और नकारात्मक पक्ष है। ... यूरोप में पति-पत्नी विच्छेद के कितने ही मामलों में आर्थिक स्वतंत्रता भी कारण बनी है।" जाहिर है लेखक स्त्रियों की दशा सुधारने के लिए आर्थिक स्वतंत्रता को उतना कारगर नहीं मानता है। तो फिर उपाय क्या है? 'आदर्श प्रेम' लेखक कहता है। यद्यपि उसके इस आदर्श प्रेम का जो स्वरूप ओर आधार है, वह अपने आप में बहुत स्पष्ट नहीं है। फिर भी वह कहता है, नस्नारी का वह आकर्षण जो प्रेम का रूप लेता है एक-दूसरे के किसी अभाव की पूर्ति करता है। दोनों को ही अपने-अपने अहं को किसी-न-किसी रूप में पोषित करने और किसी-न-किसी रूप में मिटाने की आवश्यकता होती है। जो दंपत्ति कभी एक-दूसरे के ऊपर उठकर, कभी एक दूसरे के नीचे झुककर इस आवश्यकता की पूर्ति करते रहते हैं, वे अपने संतुलित संबंध का रहस्य जान लेते हैं।" जाहिर है एक दूसरे की भावनाओं का आदर करके ही स्त्री और पुरुष सार्थक जिंदगी जी सकते हैं। इसका सबसे सरल माध्यम है 'प्रेम', जिसकी वकालत यह कृति बार-बार करती है। और यह 'प्रेम' मित्रता से ही

आत्मकथा : क्या भूलूँ क्या याद करूँ (हरिवंश राय बच्चन)

प्राप्त हो सकता है। इसलिए बच्चन बार-बार इस कृति में स्त्री के साथ एक मित्र की तरह व्यवहार करने पर बल देते हैं। बुजुर्ग और विधवा स्त्रियों का सम्मान करते हैं।

5.5 'क्या भूलूँ क्या याद करूँ' में लेखक के विचार

रचना अथवा जीवन में विचार की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। कई बार यह रचना अथवा जीवन के प्रति हमारी समझ का विकास ही नहीं करता है, बल्कि उसे निर्धारित भी करने लगते हैं। किसी कृति के प्रासंगिक और कालजयी होने में यह विचार मुख्य भूमिका निभाते हैं। कृति में व्यक्त विचार से ही हमें पता चलता है कि व्यक्ति और समाज के बारे में लेखक की समझ क्या है? सामाजिक जीवन में धर्म और दर्शन की भूमिका को लेकर वह क्या सोचता है? समय-समय पर समाज, राजनीति और देश की आर्थिक समस्याओं पर हो रहे राष्ट्र-व्यापी चिंतन से वह अपने आपको किस रूप में जोड़ता है और उनके प्रति किस प्रकार का नजरिया अपनाता है? क्या भूलूँ क्या याद करूँ में हरिवंश राय बच्चन ने जगह-जगह व्यक्ति, समाज, धर्म, दर्शन, राजनीति, रचना और लेखन के संबंध में अपने विचारों को व्यक्त किया है।

क्या भूलूँ क्या याद करूँ में आत्मकथाकार ने व्यक्ति और तत्कालीन भारतीय समाज तथा राजनीति एव उनकी विकास की प्रक्रिया को लेकर अनेक टिप्पणियाँ की है जो उपर्युक्त संदर्भ में उसके दृष्टिकोण को स्पष्ट करती है। खासकर सामाजिक विकास की प्रक्रिया और विभिन्न तरह के समाजों के आपसी संबंध तथा उसमें व्यक्ति की भूमिका को लेकर व्यक्त किए गए उसके विचार भारतीय समाज के हाशिये पर जिंदगी व्यतीत कर रहे लोगों से हमारा परिचय कराते हैं। उदाहरण के लिए समाज में सेवा के कार्य से जुड़े नाई, बारी, कहार आदि को 'परजा' (प्रजा) कहने को भारतीय समाज की सामंती मानसिकता और व्यवस्था से जोड़ते हुए वह लिखता है कि सामंती समाज बहुत से छोटे-छोटे सामंतों से निर्मित होता है, यहाँ तक कि हर संपन्न परिवार एक प्रकार का राजपरिवार हो जाता है और उसके ऊपर पलने वाले लोग। उसकी प्रजा बने रहते हैं, और उसकी विपन्नता में भी उससे चिपके रहते हैं, उससे कुछ प्राप्त करने की आशा करते रहते हैं।"

गरीबों की यह नियति है कि वे अपनी जिंदगी के लिए संपन्न वर्गों पर निर्भर रहे। भारतीय समाज में यह स्थिति इसलिए देखने को मिलती है कि औपनिवेशिक मानसिकता के गुलाम रहने के कारण अभी हमारा सामंती ढाँचा पूरी तरह से टूट नहीं पाया था, थोड़ा बदलाव जरूर आया। समाज में इस बदलाव के निर्माण और विकास की भी अनेक अवस्थाएँ रही हैं। इसमें प्रत्येक जाति, समुदाय और धर्म ने कुछ विशिष्ट परंपराएँ बनायीं, जिसे मानना बाद के समाज के लिए अनिवार्य होता गया।

इसी प्रकार लेखक ने भारतीय समाज में जाति-प्रथा और छुआ-छूत के कारण होने वाले दुष्परिणामों के बारे में अनेक जगह अपनी राय प्रकट की है तथा उसे तोड़ने का प्रयास भी। पर ऐसे विचार और प्रसंग इस कृति में कम है क्योंकि कृति का अधिकांश हिस्सा लेखक ने अपने व्यक्तिगत और रचनात्मक संघर्ष को लेकर विकसित किया है। बावजूद इन सबके, लेखक ने खुलकर इस कृति में स्त्री-पुरुष के संबंध, स्त्रियों का जीवन और उनका चरित्र, मनुष्य की वेदना और उसका अहं, मुहल्ले की सामाजिक संरचना, तत्कालीन राजनीतिक परिवेश आदि पर अपने विचारों को प्रकट किया है। इसी प्रकार मानवीय संबंध के विकास में 'वेदना' और 'अह।' की भूमिका की चर्चा करते हुए वह लिखता है कि वेदना के बिना मनुष्य का अहं नहीं टूटता और अहं के टूटे बिना एक मनुष्य से दूसरे मनुष्य के हृदय तक पहुँच नहीं होती, सेतु नहीं बनता। (पृ. 192) जाहिर है व्यक्ति और समाज के संबंध में लेखक के ये विचार मानवीय अधिक हैं। वह विचार और दर्शन की अपेक्षा व्यक्ति और समाज के संबंधों के विकास में मानवीय मूल्यों को अधिक महत्व देता है तथा यही उसके विचार को अर्थवत्ता प्रदान करते हैं।

टिप्पणी

यद्यपि क्या भूलूँ क्या याद करूँ एक ऐसे साहित्यकार की आत्मकथा है जो लंबे समय तक परिवार की समस्याओं से जूझता रहता है। इसीलिए इसमें उस तरह की राजनीतिक चेतना नहीं है जैसा कि गांधी जी या अन्य लेखकों की आत्मकथाओं में है। फिर भी तत्कालीन राजनीतिक परिवेश पर लेखक टिप्पणी करता है, राजनीतिज्ञों के बारे में अपनी राय जाहिर करता है और स्वदेशी तथा गांधी के अन्य आंदोलनों का समर्थन करता है। पर उसके राजनीतिक विचारों में भावुकता की मात्रा थोड़ी अधिक है तथा कविता की तरह राजनीतिक स्थितियों पर विचार करता है, उदाहरण के लिए गांधी जी की डांडी यात्रा के समय की राजनीतिक स्थिति पर टिण्णी करते हुए वह लिखता है : "मैरी एम.ए. प्रीवियस की परीक्षा से पहले ही गांधी जी की डांडी यात्रा. आरंभ हो गई थी और उनके प्रति पग से देश में राष्ट्रीय जागरण और जोश जोर मारने लगा। बेमन से मैंने परीक्षा दे दी, पास भी हो गया। पर जुलाई में जब युनिवर्सिटी खुली तो मैंने पढ़ाई छोड़ दी कुछ पारिवारिक चिंताओं और कुछ राजनीतिक हलचलों के कारण मेरा मन पढ़ने की तरफ से उचट . गया था। मैं आंदोलन में सक्रिय भाग लेने की स्थिति में न था, जुलूसों में नारे लगाता, सभाओं में शामिल होता। घर में चर्खा चलाता, जमुना पार गाँवों में जाकर व्याख्यान देता।" इस अंश से राष्ट्रीय आंदोलन के प्रति बच्चन के दृष्टिकोण को आसानी से समझा जा सकता है। देश भक्ति के गीत लिखना, खद्दर बेचना, क्रांतिवीरों को अपने घर में आश्रय देना और आई. सी.एस. की परीक्षा में बैठने की बजाए एम.ए. करना उन पर राष्ट्रीय विचारों के प्रभाव का ही परिणाम था। धर्म और दर्शन संबधी विचार जीवन में धर्म और दर्शन की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। खासकर भारतीय जीवन को निर्धारित करने में धर्म और दर्शन ने केंद्रीय भूमिका निभाई है। क्या भूलूँ क्या याद करूँ में लेखक ने। मुख्यत: हिंदू धर्म की सामाजिक व्यवस्था से जुड़े अनेक पक्षों पर विचार किया है और इसी क्रम में जन्म, मृत्यु, आत्महत्या आदि दार्शनिक विषयों पर खुलकर अपनी राय प्रकट की है।

लेखक ने हिंदू समाज में जाति-व्यवस्था, छुआ-छूत दीक्षा, शिखा-केश आदि की परंपरा को धर्म से जोड़ते हुए खुलकर इनका विरोध किया है। वह मानता है कि जाति व्यवस्था और छुआ-छूत का सबसे बड़ा कारण हिंदू धर्म और उसकी वर्णव्यवस्था है जो मठ एवं मंदिरों के । कारण समाज में व्याप्त रही है।

क्या भूलूँ क्या याद करूँ में जन्म, मृत्यु, आत्महत्या आदि जैसे मुद्दों पर लेखक ने एक दार्शनिक की तरह विचार किया है। यद्यपि 'आत्मा' को लेकर उठे प्रश्न का उत्तर पाने में वह अपने आपको असफल मानता है पर इस सत्य को स्वीकार करता है कि किसी की मृत्यु से दुनिया नहीं बदल जाती है बल्कि वह यथावत् चलती रहती है : पर दुनिया, दुनिया है। दुनिया के लिए कोई अनिवार्य नहीं। इधर लाश उठती है, उधर दुनिया के काम यथापूर्व होने लगते हैं। यह सच भी है। क्योंकि मरने के बाद आत्मा की परिणति कहाँ और किस रूप में होती है, इसका सही उत्तर आज तक हमारे पास नहीं है। लेकिन जीवित शरीर का सच सबके सामने होता है। लेखक कहता है, "शरीर रहने तक मनुष्य को क्या-क्या सहना पड़ता है। शरीर छटा कि सारे दु:ख-दर्द, चिंताएँ-व्यथाएँ, शोक-संताप विलुप्त! पर क्या आत्महत्या इन कष्टों से सहज मुक्ति का उपाय है? लेखक मानता है नहीं। क्योंकि आत्महत्या के बारे में"... जो आत्मकथा : क्या भूलूँ क्या याद सोचता है, वह मेरी दृष्टि में निरात्मा है। निरात्मा यानी कि जिसके अंदर सोचने, समझने और करूँ (हरिवंश राय बच्चन) महसूस करने की ताकत खत्म हो गयी हो! जो जीवन की चुनौतियों से भाग रहा हो! और ऐसा मनुष्य पौरुषवान नहीं हो सकता है।

नोट वस्तुत: धर्म और दर्शन से जुड़े विभिन्न मुद्दों पर लेखक के अंदर उठे इन विचारों का गहरा संबंध उसकी अपनी जिंदगी से रहा है। इसलिए कई जगह उसके विचार वैयक्तिक लगते हैं। पर महत्वपूर्ण बात यह है कि इन वैचारिक प्रश्नों से वह जूझता है, भागता नहीं!

आत्मकथा : क्या भूलूँ क्या याद करूँ (हरिवंश राय बच्चन)

टिप्पणी

रचना और रचनाकार संबंधी विचार

क्या भूलूँ क्या याद करूँ एक साहित्यिक की आत्मकथा है। इसलिए इस कृति में बच्चन के विचारों की सबसे अधिक प्रखरता वहाँ दिखलाई पड़ती है जब वह रचना और लेखक से जुड़े प्रश्नों पर विचार करता है। यद्यपि इन विचारों का भी गहरा संबंध उसके अपने लेखन और अनुभव से अधिक है और कहीं-कहीं नितांत व्यक्तिगत भी। पर लेखक की मानवीय मूल्यों के प्रति प्रतिबद्धता उसके विचारों को ग्राह्य बना देती है। उदाहरण के लिए वह अपने कवि बनने के कारण की चर्चा करते हुए लिखता है कि संयम का कहीं-न-कहीं विस्फोट होता है। यह मैं बड़ी सच्चाई के साथ कहता हूँ कि उसका अधिकतम विस्फोट निश्चय ही मेरे काव्य रूप में हुआ। जाहिर है 'मधुशाला' के सृजन में अपने जिस 'संयम के विस्फोट' की चर्चा लेखक करता है, वह उसकी पत्नी श्यामा को लेकर है। पर सृजन में संयम एक हद तक भूमिका निभाता है। लेकिन इसके विकास की प्रक्रिया अत्यंत जटिल होती है। शायद इसीलिए लेखक मानता है कि शब्द-कविता का, वास्तव में बहुत-से माध्यमों में से केवल एक माध्यम है। और बच्चन इसके समर्थन में किसी अंग्रेजी पंक्ति का अनुवाद प्रस्तुत कर देते हैं : 'कविता लिखने का उतना विषय नहीं, जितना जीने का और कविता जीने, जीने का सबसे दु:साध्य रूप कबीर भी इसे शीश काटना और फिर उस पर पाँव धरने की प्रक्रिया से जोड़ते हैं जिसकी चर्चा करते हुए लेखक 'अह।' को कवि का सबसे बड़ा शत्रु घोषित करते हुए कहता है कि यह कवि की चेतना को नष्ट कर देता है। बिना इसे त्यागे लेखक बनना संभव नहीं है। क्योंकि "अहं को काटने के बाद जो चेतना शीश को उठाती है, उस पर पाँव धरती है. उसी का नाम कवि है।" और कवि करता क्या है? लेखक लिखता है कि "..कवि को हर कविता लिखते समय यह दुर्धर्ष चमत्कार करना होता है या यों कहे कि जब भी सच्चे अर्थों में कविता बनती है, कवि इसी प्रक्रिया से गुजरता है।"

स्पष्टत. लेखक की ये पंक्तियाँ सिर्फ सजन की प्रक्रिया की तरफ संकेत नहीं करती है बल्कि यह भी बतलाती है कि एक कवि अर्थात रचनाकार का जन्म कैसे होता है? जिन जटिल। प्रक्रियाओं से गुजरकर कोई रचना किसी विधा का रूप धारण करती है उसका अपना एक अलग समाजशास्त्र होता है। यह समाजशास्त्र कहीं बाहर निर्मित नहीं होता है बल्कि उसका सजन व्यक्ति की अंतर्चेतना में होता है। 'प्रवास की डायरी' (1979) में बच्चन ने कविता की चर्चा करते हुए लिखा है कि 'कविता, गहन भावों-विचारों की या इससे अच्छा होगा यह कहना कि गहन क्षणों की सहज वाणी है या अगम अनुभूतियों की सुगम अभिव्यक्ति।' दूसरे शब्दों में वे रचना को लेखक द्वारा "अपनी अनुभूति को स्वाभाविक ढंग सेष रखने की कला मानते हैं। इसलिए कि 'कला का लक्ष्य है कि जो व्यक्तिगत है, सीमित है, आत्मयोगी है, उसे सर्वमत, सार्वभौम और सार्वभोगी बना दिया जाए।' (नीड़ का निर्माण फिर, संस्करण : 1980, पृ. 66)

वास्तव में हरिवंश राय बच्चन काव्य या अन्य कला को लेखक अथवा कलाकार द्वारा अपनी अनुभूतियों को समय और समाज के साथ जोड़कर सार्वजनिक रूप से प्रकट करने की चेतना मानते हैं। मुक्तिबोध इसे थोड़ा अधिक यथार्थवादी बनाते हुए उसी रचना को वास्तविक मानते हैं जो 'जीवन की चेतना से परिपूर्ण' होती है तथा जिसमें "अपने प्रति और अपने युग के प्रति अधिक उत्तरदायित्वष की भावना होती है। अर्थात् "अपने अंत:करण में स्थित जीवनानुभवों को उनके संपूर्ण बाह्य संदर्भो के साथ उपस्थिति करना। (संदर्भ : मुक्तिबोध रचनावली, भाग : पाँच, संस्करण : 1985, पृष्ठ क्रमश : 24, 199)

वस्तुत: सृजन और उसकी प्रक्रिया को बच्चन एक जटिल प्रक्रिया मानते हैं। क्योंकि नका सत्य वस्तगत सत्य से कहीं अधिक सजीव होता है।ष इसलिए वे स्पष्टत: कहते हैं कि जब मैं अपनी अनुभूतियों में जीता हूँ - कला के माध्यम से अनुभूतियों को जीना, शायद जीने से अधिक घनत्व से, तीव्रता से, गहराई

टिप्पणी

से जीना है – तब मैं सारे संसार के लिए मर जाता हूँ, और मैं चाहता हूँ कि कोई कुछ भी ऐसा न करे जिससे मैं संसार में जीने के प्रति सचेत हो जाऊँ, जब तक कि मेरी ही समाधि न टूटे।" स्पष्टत: यहाँ बच्चन अनुभूतियों को प्रस्तुत करने के लिए दार्शनिक बेकन के जिस हालावादी स्थिति की ओर संकेत करता है, वह यह मानकर चलती है कि अनुभूति के साथ बिना गहन संबंध और स्थितियों के साथ तादात्म्य के रचना का उद्‌भव हो ही नहीं सकता है। यह कृतिकार पर निर्भर है कि वह रचना की व्यापकता के लिए किस हद तक अपने को कुछ समय के लिए बाह्य संसार से अलग कर लेता है।

अनुभूति, रचना-प्रक्रिया और रचनाकार के अतिरिक्त क्या भूलूँ क्या याद करूँ में बच्चन ने, कला के अन्य रूपों; कल्पना और यथार्थ, जीवन और रचना में तर्क और भावुकता का द्वन्द, कवि का मार्ग, जनता की प्रशंसा, साहित्य में राजनीति, कविता और जीवन का संघर्ष आदि जैसे विभिन्न रचनात्मक मुद्दों और प्रश्नों पर खुलकर अपने विचार प्रकट किये हैं तथा जगहजगह उनकी मार्मिक व्याख्या की है। ये व्यख्या और विचार -लेखक की इस कृति को महत्वपूर्ण बनाते हैं।

5.6 'क्या भूलूँ क्या याद करूँ' का संरचना शिल्प

आत्मकथा की रचना विषयवस्तु के स्तर पर अन्य साहित्यिक विधाओं से भिन्न होती हैं इसलिए रचनाकार एक सीमा के बाद रचना के स्वरूप को निर्मित करने के लिए स्वतंत्र होता है। क्या भूलूँ क्या याद करूँ की रचना में हरिवंश राय बच्चन ने इसके स्वरूप की निर्माण में अनेक प्रक्रियाएँ अपनाई हैं चाहे वह रचना में जातीय, पारिवारिक और सामाजिक संदभी के उपयोग की बात हो अथवा कथा के अंदर अवांतर कथाओं की संरचना का, आत्मकथा की रचना के निर्धारित मापदंडों को अपनाने की बात हो या लेखन शैली में विविधतापूर्ण प्रयोग का। दूसरे शब्दों में हम कह सकते है कि इस आत्मकथा की रचना में वे कोई निश्चित पद्धति अपनाकर नहीं चले हैं बल्कि कथानक के हिसाब से रचना का स्वरूप रचा है।

वास्तव में किसी भी कृति का स्वरूप रचना के बाहर के सामाजिक यथार्थ और भीतर के यथार्थ के अंतर्संबंध से निर्धारित होता है। क्या भूलूँ क्या याद करूँ में लेखक स्वयं रचना का विषय है और उसने अपने जीवन की वास्तविकता और आकांक्षा को रचना की अंतर्वस्तु के रूप में चित्रित किया है। एक तरह से रचना के बाहर और भीतर का यथार्थ स्वयं उसका जीवन है। इसलिए इस कृति का स्वरूप उसके जीवन और परिवार की परंपरा से गहरे रूप आत्मकथा : क्या भूलूँ क्या याद में प्रभावित है।

करूँ (हरिवंश राय बच्चन) – क्या भूलूँ क्य याद करूँ की मुख्य कथा है लेखक की बचपन से लेकर पहली पत्नी श्यामा की मृत्यु तक की जिंदगी, जिसका चित्रण उसने वर्णनात्मक शैली में किया है। नोट कथा-संरचना के स्तर पर इस आत्मकथा को मुख्यत: तीन भागों में बांटा जा सकता है – आरंभ, मध्य और अंत। आत्मकथा के आरंभ में लेखक ने कायस्थ जाति के उद्‌भव और विकास के साथ ही उसकी कमजोरियों और विशषताओं का वर्णन किया है। कथा को रोचक बनाने क लिए उसने बीचबीच में प्राचीन भारतीय ग्रंथ और लोक में प्रचलित अनेक ऐसी कथाओं का उल्लेख किया है जो इस जाति के लोगों की विशेषताओं की ओर संकेत करते हैं। मध्य में आत्मकथाकार ने जन्म, परिवार की परंपरा और उसकी स्थिति तथा शिक्षा एवं समाजीकरण में भूमिका निभाने वाले मुख्य व्यक्तियों की चर्चा है। आत्मकथा के अंत में लेखक ने युवावस्था की जिंदगी, प्रेमप्रसंग और कठिन जीवन संघर्ष की चर्चा की है जिसमें कर्कल-चंपा, श्रीकृष्ण सूरी-प्रकाशों और श्याम से विवाह तथा उसकी बीमारी एवं मृत्यु का मार्मिक चित्रण किया है। कथा के इन तीनों भागों को रोचक और मार्मिक बनाने के लिए आत्मकथाकार ने बीच-बीच में छोटी-छोटी कथाओं की रचना की हैं, काव्य-पंक्तियों को उद्धृत किया है और यथार्थ

टिप्पणी

जीवन के अनेक ऐसे प्रसंगों और व्यक्तियों के जीवन से जुड़ी घटनाओं का वर्णन किया है जो कृति को पठनीय बनाते हैं। वास्तव में हरिवंशराय बच्चन की इस आत्मकथा की सबसे बड़ी विशेषता है कथा की एकरूपता और प्रस्तुत करने की अद्‌भुत शैली। इसमें उनकी जाति, परिवार, मित्र, शिक्षक, साहित्यकार आदि अनेक लोगों की कथाएँ हैं पर इन्हें पढ़ते हुए कहीं भी इस बात का अहसास नहीं होता कि पाठक अलग-अलग जीवन और प्रसंग की कथा पढ़ रहा है। इनकी आपसी एकता और। विकास की प्रक्रिया में एक तार्किकता है और यह तार्किकता कथा की संरचना को प्रभावशाली बनाती है। इसीलिए बच्चन जब बीच में कोई नयी कथा शुरू करते हैं तब उसके लिए कोई भूमिका नहीं बाँधते है। जीवन से कोई भी छोटी-सी बात उठाते हैं और कहानी आगे बढ़ने लगती है। आत्मकथा में वस्तुगत तथ्य के उपयोग का एक विशिष्ट अर्थ होता है। सतर्क रचनाकार सोच समझकर इनका उपयोग करता है। उसे इस बात का अंदाज होता है कि जाति, परिवार और समाज के कौन-से संदर्भ उसकी कृति के स्वरूप को व्यापक बनाने में मदद कर सकते हैं और कौन-से अनावश्यक विस्तार। 'क्या भूलूँ क्या याद करूँ' में बच्चन ने इन संदर्भो का उपयोग बहुत ही सोच-समझकर किया है और इससे उनकी कृति के स्वरूप को व्यापक बनाने में मदद मिली है। यही कारण है कि उनकी यह आत्मकथा महत्वपूर्ण बन पड़ी है।

गद्य एक अन्य विधाओं में लेखक दूसरों की जिंदगी, जीवन-संघर्ष, उपलब्धियों आदि के बारे में लिखता है। इसलिए उन विधाओं की रचना प्रक्रिया के तत्व और उनके स्वरूप निश्चित होते हैं चाहे वह नाटक हो या कहानी, उपन्यास हो अथवा जीवनी। परंतु आत्मकथा में लेखक अपनी जिंदगी की कहानी खुद लिखता है। इसलिए इसकी रचना-प्रक्रिया के तत्व अन्य विधाओं के समान होते हुए भी अपनी प्रस्तुति में भिन्न होते हैं। कथानक, चरित्र, भाषा, देशकाल, कथोपकथन आदि जैसे प्रचलित रचना-तत्व इसमें भी होते हैं पर आत्मकथा में इनकी प्रस्तुति एक निश्चित संदर्भ में होती है। उदाहरण के लिए हम देशकाल को ले सकते हैं। गद्य की अन्य विधा में देशकाल के चित्रण का जो अर्थ होगा, वही आत्मकथा में नहीं हो सकता है। आत्मकथा में लेखक उन्हीं घटनाओं और स्थितियों का वर्णन करता है जिनका गहरा संबंध उसकी जिंदगी से होता है। इसलिए आत्मकथा का सीधा अर्थ 'अपनी कहानी' माना जाता है, जिसमें लेखक आपबीती को समकालीन जीवन और संसार से जोड़कर चित्रित करता है। क्या भूलूँ क्या याद करूँ में हरिवंशराय बच्चन ने यही किया है। उन्होंने अपनी जिंदगी की कहानी तत्कालीन सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक परिस्थितियों के साथ जोड़कर लिखी है। इसी प्रकार, आत्मकथा की रचना में लेखक गद्य की अन्य विधाओं के प्रचलित तत्व के साथ ही कुछ खास बातों पर ध्यान देता है जैसे - तटस्थता, आत्मालोचन, युगीन परिवेश के साथ उसका संबंध आदि। ये आत्मकथा के कुछ खास तत्व हैं। इनके बिना आत्मकथा की रचना संभव नहीं है।

सबसे पहले, तटस्थता। तटस्थता आत्मकथा का सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व है। क्या भूलूँ क्या याद करूँ में हरिवंश राय बच्चन ने तटस्थ होकर अपनी जिंदगी की कहानी लिखी है। हरिवंश राय बच्चन की यह आत्मकथा मुख्यतः इलाहाबाद की स्मृतियों पर आधारित है जिसमें लेखक ने अपने जीवन की अच्छी-बुरी सभी प्रकार की घटनाओं का वर्णन किया है। लेखक ने आत्मकथा का यह भाग 1963 से 1969 के बीच लिखा है, जब उसकी उम्र छप्पन वर्ष के आसपास होगी। इसलिए यह संभव है कि लेखक की स्मृति में बहुत सारी घटनाएँ नहीं रही होगी अथवा होगी भी तो वह उन्हें एक दूरी से स्मरण करता है। पर जहाँ भी उसकी स्मृति स्पष्ट नहीं है उसकी चर्चा करके छोड़ देता है अथवा जब विस्तार से उन पर बात करता है, तब उन घटनाओं और स्थितियों के प्रति आत्मालोचन की प्रक्रिया अपनाता है। यह आत्मालोचन ही है जो क्या भूलूँ क्या याद करूँ में लेखक को अनावश्यक विस्तार और आत्म-मुग्ध ता से बचाता है। वह भावुकता के साथ स्थितियों का चित्रण जरूर करता है और इस क्रम में आवेश

टिप्पणी

तथा उत्साह में बिताए गए क्षण एवं संपर्क में आए लोगों की सीमा से बाहर जाकर मदद करता है। पर बाद में जब उसे अपनी गलती का अहसास होता है तब अपने इस स्वभाव की आलोचना भी करता है। उसके आत्मलोचन की यह निमर्म प्रक्रिया ही है कि चंपा, श्रीकृष्ण सूरी, प्रकाशों आदि के साथ बिताए गए अपने भावुकतापूर्ण समय का निष्पक्ष मूलयांकन करता है और गलतियों को स्वीकार करता है।

आत्मालोचन की यह सतत संवेदनशील और निमर्म प्रक्रिया बच्चन की इस आत्मकथा में अनेक जगह दिखलाई पड़ती है जो लेखक की बात को प्रामाणिक ही नहीं, प्राणवान और स्थायी मूल्य का बना देती है। युगीन सत्य के साथ लेखक के संबंध का चित्रण आत्मकथा के अत्यंत महत्वपूर्ण तत्वों में से एक है। क्या भूलूँ क्या याद करूँ में हरिवंश राय बच्चन ने अपन जीवन के जिस काल-खंड का चित्रण किया है, वह 1936 तक आते-आते समाप्त हो जाता है। यह काल भारतीय इतिहास में सुधार तथा स्वाधीनता आंदोलन का माना जाता है। 1857 के गदर के बाद एक तरफ भारतीय समाज जहाँ अनमेल विवाह, विधवा जीवन, छूत-अछूत आदि के खिलाफ राष्ट्रीय-व्यापी सुधार के दौर से गुजर रहा था, वहीं दूसरी तरफ ब्रिटिशकालीन भारतीय राजनीति में क्रांतिकारी गतिविधियाँ और गांधी के अछूताद्धार से लेकर राष्ट्रीय मुक्ति के लिए किए जा रहे आंदोलनों के काल के रूप में जाना जाता है। इसी प्रकार साहित्य में समाज और राष्ट्र से जुड़ने की गंभीर चेतना इस काल की रचनाओं में दिखलाई पड़ती है। इस दृष्टि से बच्चन की यह आत्मकथा अत्यंत महत्वपूर्ण है।

वास्तव में आत्मकथा लेखन एक जटिल प्रक्रिया है। इसीलिए क्या भूलूँ क्या याद करूँ आत्मकथा : क्या भूलूँ क्या याद की रचना करते-करते लेखक कई जगह ठहर जाता है। खासकर उन प्रसंगों में जिनका गहरा करूँ (हरिवंश राय बच्चन) संबंध उसकी निजी जिंदगी से रहा है। कारण, वह तय नहीं कर पाता है कि किस हद तक जीवन की सच्चाइयों को सार्वजनिक करे और किस हद तक नहीं। क्योंकि कई बार निजी नोट जिंदगी की बहुत सारी बातें ऐसी होती हैं, जिसे लेखक सार्वजनिक हित को ध्यान में रखते हुए प्रकट नहीं कर पाता है, सिर्फ संकेत करके छोड़ देता है। यह एक हद तक ठीक भी है। इससे कृति की गरिमा बनी रहती है। चंपा और प्रकाशो से अपने संबंधों की बातें बच्चन एक सीमा तक ही प्रकट करते हैं और शेष बातें संकेत करके छोड़ देते हैं। इसी प्रकार आत्मालोचन की प्रक्रिया की भी एक सीमा होती है। उसमें भावुकता की जगह विचार का स्थान अधिक होता है। यद्यपि कई जगह क्या भलँ क्या याद करूँ में लेखक आत्मालोचन की प्रक्रिया में अत्यत भावुक हो उठता है, चाहे वह श्यामा पर पूरा ध्यान न दे पाने की बात हो या पं. रामचरण शुक्ल द्वारा अपने पिता की आर्थिक मदद करने का प्रसंग। पर, शीघ्र ही वह संभल जाता है और इसे जीवन का एक सच मानकर आगे बढ जाता है। यही कारण है कि रचना में आए ये सारे प्रसंग बच्चन की इस आत्मकथा और उसके स्वरूप को व्यापक बनाते हैं।

5.7 'क्या भूलूँ क्या याद करूँ' का महत्व और उपयोगिता

क्या भूलूँ क्या याद करूँ का प्रथम संस्करण 1969 में निकला था और तब से अब तक इसके कई संस्करण निकल चके हैं। उसके पर्व तथा बाद में हिंदी में अनेक आत्मकथाएँ प्रकाशित हुई, जिन्होंने हिंदी भाषी समाज को अपनी ओर आकर्षित किया। जैसे - बाबू श्याम सुंदर दास कृत हिंदी की पहली आत्मकथा 'मेरी आत्मकहानी' (1941), राहुल सांकृत्यायन कृत 'मेरी जीवन यात्रा' (1946), पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी कृत 'मेरी अपनी कथा' (1958), सेठ गोविंददास कृत 'आत्मनिरीक्षण' (1958), पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र कृत 'अपनी खबर' (1960), आचार्य चतुरसेन शास्त्री कृत 'मेरी आत्मकहानी' (1963) आदि। हिंदी में इन आत्मकथाओं की अलग-अलग महत्ता और उपयोगिता

आत्मकथा : क्या भूलूँ क्या याद करूँ (हरिवंश राय बच्चन)

टिप्पणी

है। उदारहण के लिए इनमें बाब श्यामसंदर दास की 'मेरी आत्मकहानी' जहाँ बनारस और उसमें भी नागरी प्रचारिणी सभा के जीवन से जुड़ी सच्चाइयों से हमारा परिचय कराती है, वहां पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र की 'अपनी खबर' यह बतलाती है कि अपने जीवन की सच्चाइयों को किस प्रकार प्रकट किया जाता है। पर बच्चन की आत्मकथा इस मायने में अलग है। यह एक तरफ जहाँ आत्मकथा की उस संस्कृति से हमारा परिचय कराती है जिसकी जरूरत कहानी और उपन्यास जैसी विधाओं में भी कथाकार महसूस नहीं करते, वहीं दूसरी तरफ उनके काव्य-साहित्य के मूल्यांकन के लिए अनेक ऐसे स्रोतों की जानकारी देती है जिनके विषय में हिंदी साहित्य अब तक अनभिज्ञ था। उदाहरण के लिए बच्चन अपनी कविताओं को जिस 'संयम के विस्फोट' से जोड़ते हैं, उसे बिना 'क्या भूलूँ क्या याद करूँ' को पढ़े समझा नहीं जा सकता है।

हरिवंश राय बच्चन की इस आत्मकथा की सबसे बड़ी विशेषता है अपने जीवन के अनेक रूपों की संदर्भ सहित व्याख्या, जो कि अन्य आत्मकथाओं में कम ही उपलब्ध होती है। बीच-बीच में वे अपने लेखन, सृजन-प्रक्रिया, प्रकाशन, साहित्यिक विकास, गोष्ठियों-सम्मेलनों आदि की चर्चा करते हैं और इन प्रसंगों से अपने आपको जोड़ते हुए तत्कालीन साहित्यिक परिवेश का चित्रण करते हैं। सामान्य शब्दों में, क्या भूलूँ क्या याद करूँ का कथ्य लेखक का रचनात्मक विकास नहीं, बल्कि उनके रचनात्मक व्यक्तित्व का विकास दिखलाता है जिसे वह जाति, वंश, परंपरा और परिवार के कठिन जीवन-संघर्ष के साथ जोड़कर प्रस्तुत करता है। इस क्रम में वह ऐसे अनेक प्रसंगों और घटनाओं का उल्लेख करता है जिनका गहरा संबंध उसके व्यक्तिगत जीवन से रहा है। चाहे वह चंपा से प्रेम का प्रसंग हो अथवा श्यामा से संयमपूर्ण व्यवहार का। बिना किसी संकोच के वह अपने जीवन के इस 'सच' को प्रकट करता है।

वास्तव में हरिवंशराय बच्चन की आत्मकथा का यह पहला भाग उनकी पहली पत्नी श्यामा की मृत्यु तक की जिंदगी को संपूर्णता में उपस्थित करता है चाहे वह परिवार हो या युगीन परिवेश, परंपरा हो अथवा समाज। क्या बाबा, क्या राधा बुआ, क्या कर्कल, क्या चंपा, क्या प्रकाशों और क्या श्रीकृष्ण सूरी - श्यामा के साथ ही उसकी जिदगी में आए ये सारे लोग लोक के जीवन और उसकी सोच को विस्तार देते हैं और समय तथा समाज के साथ जोड़ते हुए फ्रांसीसी लेखक मानतेन के शब्दो में उसकी निजी जिंदगी की विशिष्टता को हमारे सामने संपूर्णता में उपस्थित कर देते हैं। आत्मकथाकार न तो अपन जीवन के दोषों को छुपाता है और न ही गुणों को। अपने सरल, सहज और साधारण जीवन स्वरूप को वह अत्यंत स्वाभाविक शैली में प्रस्तुत करता है। शायद यही कारण है कि साहित्य की अन्य विधाओं की तरह इस कृति में कहीं भी उस तरह के उतार-चढ़ाव अथवा क्लाइमैक्स के दर्शन नहीं होते हैं जैसा कि अन्यत्र होता है। बस है तो सिर्फ लेखक का सच्चा और संवेदनशील जीवन - जिसमें कुछ सुख है तो बहुत सारे दु:ख भी। वह न तो किसी को त्यागता है और न ही किसी के प्रति अतिशय आग्रह दिखलाता है। सब कुछ समान रूप और गति से इस आत्मकथा में दर्ज हुआ है। भाषा में वर्णनात्मकता और पात्र तथा परिवेश के अनुकूल शब्दों का चयन एवं प्रयोग इस कृति को महत्वपूर्ण बनाते हैं। एक सर्जनात्मक व्यक्तित्व के विकास और मार्मिक गहा का उत्कृष्ट नमूना है। क्या भूलूँ क्या याद करूँ, जिसे बार-बार पढ़ना अच्छा लगता है।

5.8 सारांश

हरिवंशराय बच्चन की क्या भूलूँ क्या याद करूँ पर केंद्रित इस इकाई में उनकी आत्मकथा के पहले भाग पर विचार किया गया है जिसमें लेखक के जन्म से लेकर पहली पत्नी श्यामा की मृत्यु तक का मार्मिक वर्णन है। यह सही है कि आत्मकथाकार का अपना एक समाज और अपनी एक संस्कृति होती

टिप्पणी

है। बिना उससे टकराये, आत्मकथा की रचना संभव नहीं है। और वह संस्कृति है अपने जीवन की सच्चाइयों का यथार्थ चित्रण। लेखक, आत्मकथा लेखन के बहाने समाज और संस्कृति के इस 'सच' से टकराता है। बच्चन भी उस आत्मकथा में बास्बार अपने जीवन की सच्चाइयों से टकराते हैं। इस इकाई को पढकर आप उनके जीवन के इस 'सच' और इससे टकराने की प्रक्रिया को समझ सकते हैं।

यह सही है कि लेखक के जीवन में बहुत सारी बातें ऐसी होती है जिसे वह कहानी, कविता, उपन्यास, नाटक, निबंध जैसी प्रचलित विधाओं में व्यक्त नहीं कर पाता है। खासकर जीवन की वैसी सच्चाइयाँ जो समाज और लेखन की मर्यादाओं से अनुशासित होती हैं। बच्चन अपने जीवन के जिस सच को प्रकट करना चाहते हैं, उसके लिए उपयुक्त विधा आत्मकथा ही है। कारण, आत्मकथा की संरचना ऐसी होती है कि लेखक उसमें एक सीमा तक छूट ले सकता है। चाहे वह जाति का प्रसंग हो अथवा समाज का। व्यक्ति हो अथवा परिवार का। वह इसमें कथा कहने की भिन्न-भिन्न शैलियों का प्रयोग कर सकता है। इस इकाई को पढ़कर आप देखेंगे कि बच्चन लेखन के स्तर पर रचना की अनेक शैलियों का प्रयोग करते हैं और आत्मकथा : क्या भूलूँ क्या याद आत्मकथा को रोचक, पठनीय तथा प्राणवान बनाते हैं।

करूँ(हरिवंश राय बच्चन)आत्मकथा में न ही कोई विषयवस्तु निर्धारित होती है और न ही अंतर्वस्तु। पर लेखक इस बात का ध्यान रखता है कि जो भी प्रसंग अथवा घटनाएँ चित्रित हो, उससे उसके जीवन नोट का सीधा जुड़ाव हो। क्या भलँ क्या याद करूँ में बच्चन ब्रिटिशकालीन भारतीय जीवन के ऐसे अनेक प्रसंगों और घटनाओं का उल्लेख करते हैं जिनका गहरा संबंध तत्कालीन समाज से है। पर उन्हें वे अपने जीवन से जोड़कर देखते हैं। आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक और साहित्यिक परिवेश किस स्तर पर एक लेखक को प्रभावित करते हैं, और उनका चित्रणा आत्मकथात्मक कृति में वह किस प्रकार करता है, इस इकाई को पढ़कर देखा जा सकता है।

विचार तथा थोड़ा और स्पष्ट करें तो दृष्टिकोण का रचनाकार के जीवन में महत्वपूर्ण स्थान होता है। पर बड़ा रचनाकार अपनी दृष्टि को रचना पर आरोपित नहीं करता है बल्कि घटनाओं और प्रसंगों के माध्यम से अपने विचारों को स्पष्ट कर देता है। क्या भूलूँ क्या याद करूँ में बच्चन सामाजिक रूढ़ियों, मान्यताओं, समस्याओं आदि के खिलाफ और रचना तथा रचनाकार के बारे में जगह-जगह अपनी राय व्यक्त करते हैं। इस इकाई को पढ़कर आप देखेंगे कि बच्चन अपने भावों और विचारों को किसी घटना अथवा प्रसंग के साथ जोड़कर प्रस्तुत करते हैं - सीधे-सीधे आरोपित नहीं। उसका औचित्य बतलाते हैं और मानवीय मूल्यों के आधार पर उन्हें मानने और समझने की वकालत करते हैं।

निष्कर्षत: हरिवंशराय बच्चन की आत्मकथा का यह पहला भाग एक लेखक के लेखकीय व्यक्तित्व के बनने की प्रक्रिया से हमें परिचित करता है। इस क्रम में उसके सकारात्मक और नकारात्मक पहलुओं पर टिप्पणी करता है तथा यह बतलाता है कि लेखन के लिए जितनी जरूरत सामाजिक प्रतिबद्धता की होती है उतनी निजी जिंदगी में ईमानदारी की भी। बिना अपनी निजी जिंदगी में ईमानदार हुए कोई भी लेखक अपने समाज के 'संपूर्ण सच' को प्रकट करने का दावा नहीं कर सकता। क्या भूलूँ क्या याद करूँ के माध्यम से लेखक ने इस सच को प्रकट करने का साहस पाठक सामज के सामने किया है और यही इस आत्मकथा की सबसे बड़ी विशेषता है।

टिप्पणी

5.9 अभ्यास प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. आत्मकथा की विशेषताओं के संदर्भ में क्या भूलूँ क्या याद करूँ का मूल्यांकन कीजिए।
2. क्या भूलूँ क्या याद करूँ में लेखकीय दृष्टिकोण का विवेचनात्मक उल्लेख कीजिए।
3. उक्त आत्मकथा की संरचनात्मक विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
4. 'क्या भूलूँ क्या याद करूँ' का महत्व और उपयोगिता पर प्रकाश डालिए।
5. 'क्या भूलूँ क्या याद करूँ' में लेखक के विचार पर उल्लेख कीजिए।

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. 'क्या भूलू क्या याद करूँ' का सारांश अपने शब्दों में करें।
2. 'क्या भूलू क्या याद करूँ' का संरचना शिल्प अपने शब्दों में बताएँ।
3. 'क्या भूलू क्या याद करूँ' की रचना और रचनाकार संबंधी विचार व्यक्त करें।
4. 'क्या भूलू क्या याद करूँ' में लेखक के विचार विस्तृत रूप में समझाएँ।
5. आत्मकथा के रूप में 'क्या भूलू क्या याद करूँ' व्याख्या करें।

♦♦♦♦♦

टिप्पणी

टिप्पणी

टिप्पणी

References and Suggested Reading

lnHk iLrd

- हिन्दी निबंध : उद्भव और विकास डॉ. ओंकरनाथ शर्मा
- श्रेष्ठ हिन्दी निबंधकार : डॉ. सुरेश गुप्ता
- भारतेन्दु समग्र- हिन्दी प्रकाशन संस्थान
- भारतेन्दु कला - प्रेमनारायण शुक्ल
- भारतेन्दु की विचारधारा - डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय
- भारतेन्दु युग और हिन्दी भाषा की विकास परम्परा- रामविलास शर्मा
- भारतेन्दु की भाषा और शैली -गोपाल खन्ना
- भारतेन्दु ग्रंथावली - संपादक ब्रजरत्नदास
- हिंदी निबंध साहित्य - रामजी उपाध्याय
- निबंध निर्माण - रविन्द्र प्रकाश
- हिन्दी निबंध -गंधर्व नारायण
- /kk[kk&irkc ukjk;.k feJ
- D;k Hky D;k ;kn d:& Mk gfjo'k jk;

Internet links

https://www.youtube.com/watch?v=hzCB6WqpFgc

https://www.youtube.com/watch?v=QlqNL7Cz9w4

https://www.youtube.com/watch?v=6NHNIuTqNmY

https://www.youtube.com/watch?v=qPWbJ00g5Cw

https://www.youtube.com/watch?v=6fPfy1lAz6M